सम्प्रेषण

और

सम्प्रेषणात्मक व्याकरण

विद्यानिवास मिश्र

H
418.2
M 687 S

य हिंदी संस्थान • आगरा

H
418.2
M687S

प्रसार व्याख्यान माला—11

सम्प्रेषण और सम्प्रेषणात्मक व्याकरण

विद्यानिवास मिश्र

केंद्रीय हिंदी संस्थान • आगरा

© केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

प्रथम संस्करण : 1988

H
418.2
M687S

मूल्य : 8 00

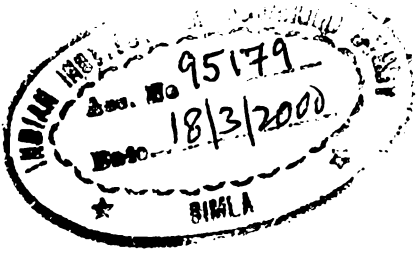

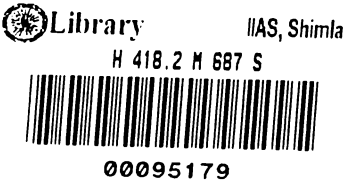

केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग आगरा-5 द्वारा प्रकाशित और नरेन्द्रा प्रिंटर्स, फ्रीगंज रोड, आगरा-4 द्वारा मुद्रित ।

आमुख

केंद्रीय हिंदी संस्थान की स्थापना 1961 में भारत सरकार द्वारा की गई। हिंदी का प्रचार-प्रसार, हिंदी के अखिल भारतीय स्वरूप संबंधी अध्ययन एवं अनुसंधान, हिंदी शिक्षण तथा प्रशिक्षण की अधुनातन प्रविधियों का विकास, अहिन्दी प्रदेशों के हिंदी अध्यापकों का प्रशिक्षण, विभिन्न स्तरों एवं क्षेत्रों के अध्येताओं के लिए भाषा-वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षण सामग्री का निर्माण एवं विदेशी अध्येताओं के लिए हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था आदि इसके प्रमुख प्रकार्य हैं। हिंदी के बढ़ते हुए प्रयोग-क्षेत्रों को देखते हुए प्रयोजन मूलक पाठ्यक्रमों का विकास तथा शिक्षण सामग्री का निर्माण, इससे सम्बन्धित अनुसंधान कार्य भी संस्थान के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

विभिन्न भाषायी समुदायों के लिए शिक्षण सामग्री का निर्माण करने हेतु हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का व्यतिरेकी अध्ययन, विभिन्न अहिन्दी भाषी छात्रों द्वारा हिंदी सीखने और उसका व्यवहार करने में होने वाली त्रुटियों का आकलन एवं विश्लेषण, वैज्ञानिक पद्धति से शिक्षण सामग्री निर्माण के लिए अत्यावश्यक हैं। संस्थान ने इस दिशा में भी महत्वपूर्ण कार्य किए हैं और इनका उपयोग शिक्षण सामग्री के निर्माण में किया गया है। इतना ही नहीं; संस्थान ने आदिवासी क्षेत्रों में उनकी मातृभाषाओं में शिक्षा प्रारम्भ करने हिंदी में अन्तरण और अन्ततोगत्वा राज्यभाषा में शिक्षा प्राप्त कराने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन शिक्षण सामग्रियों का पूरी प्रकार से परीक्षण करके, इन्हें अन्तिम रूप में प्रयोग योग्य बनाकर प्रकाशित किया/करवाया है। विभिन्न राज्य सरकारों, हिंदी की स्वैच्छिक संस्थाओं तथा अन्य प्रतिष्ठानों के लिए हिंदी शिक्षण सम्बन्धी पाठचर्या, पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण आदि में भी संस्थान अपनी विशेषज्ञता का लाभ दे रहा है। शिक्षण सामग्री के निर्माण के साथ-साथ अनुषंगिक सामग्री का निर्माण कार्य भी संस्थान कर रहा है। अनुषंगिक सामग्री के रूप में अध्यापक दर्शिका, व्याकरण/व्याकरणिक टिप्पणियाँ, शब्दसूची/छात्रोपयोगी कोश का निर्माण भी संस्थान कर रहा है।

संस्थान हिन्दी के विविधों पक्षों पर कार्य करने करने वाली अन्य संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों में कार्य करने वाले विद्वानों के साथ सक्रिय सम्बन्ध रखता है और उनकी विशेषज्ञता का लाभ उठाता है। इस सहयोग की प्राप्ति संस्थान द्वारा संचालित प्रसार व्याख्यान माला द्वारा की जाती है। प्रसार व्याख्यान माला का

आयोजन संस्थान की प्रारंभिक अवस्था से ही किया जाता रहा है। इस व्याख्यान माला के अंतर्गत हिंदी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, हिंदी भाषा शिक्षण (अन्य भाषा के रूप में), शिक्षा-शास्त्र, एवं भाषा शिक्षण प्रविधि आदि विषयों पर प्रतिवर्ष दो तीन प्रसार व्याख्यान आयोजित किए जाते हैं। इन प्रसार व्याख्यानों को संस्थान स्वयं प्रकाशित करता है।

संप्रेषण प्रारम्भ से ही भाषा की प्रमुख भूमि पा रहा है। प्राचीन विचारकों ने, देश काल की सीमा का बन्धन न मानते हुए भाषा को संप्रेषण का माध्यम, विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम तथा सामाजिक सम्बन्धों के निर्वाह का माध्यम माना है। भाषा शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य होता है, संप्रेषण को प्रभावी बनाना तथा वक्ता और श्रोता के बीच संवाद की स्थिति का निर्माण करना। जहाँ भाषा आमने-सामने खड़े होकर यह भूमिका निभाती है वहाँ भाषा के साथ-साथ इंगित संकेत मुद्राएँ आदि इस संप्रेषण को अधिक प्रभावशाली बना देती हैं। आज तकनीकीकरण के कारण यह संप्रेषण अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। प्रो० डॉ० विद्यानिवास मिश्र भारतीय व्याकरणिक परम्परा के अनन्य विद्वान तो हैं ही, वे एक मौलिक चिन्तक भी हैं तथा भारतीय चिन्तन धारा के साथ जुड़े हुए एक संवेदनशील रचनाकार भी हैं जो अपनी रचनाओं के माध्यम से इस संप्रेषण को सजीव बनाते रहते हैं। हिंदी के संप्रेषणपरक व्याकरण पर दिए गए उनके ये भाषण संप्रेषण की समस्या की चर्चा करते हुए, संप्रेषण व्याकरण के विषय में भारतीय चिन्तन को प्रस्तुत करके उसके आधुनिक संदर्भ पर सम्यक प्रकाश डालते हैं। ये व्याख्यान संप्रेषणपरक व्याकरण के न केवल सैद्धान्तिक पक्षों को उजागर करते हैं, वरन् उसके आयामों को भी परिभाषित करते हैं। आशा है ये व्याख्यान जहाँ एक ओर संप्रेषण और उसके महत्व को समझने में सहायक होंगे, वहीं दूसरी ओर भाषा विश्लेषण तथा व्याकरण के अध्ययन को एक नई दिशा भी देंगे।

(अमर बहादुर सिंह)
कार्यकारी निदेशक

दीपावली 1988

विषय–सूची

1. सम्प्रेषण : समस्या और समाधान 1
2. सम्प्रेषण व्याकरण : भारतीय चिन्तन 15
3. सम्प्रेषण व्याकरण 28

सम्प्रेषण : समस्या और समाधान

भाषा के अध्ययन में सम्प्रेषण नया आयाम नहीं है, चाहे प्राचीन भारत के विचारक रहे हों चाहे पश्चिम के विचारक रहे हों, सबने भाषा को विचारों के सम्प्रेषण और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है, परन्तु सामाजिक सम्बन्धों की जटिलता तथा तकनीकी विकास के दबाव में सम्प्रेषण के तकनीकीकरण के कारण भाषा-व्यापार में सम्प्रेषण को कुछ अधिक महत्व दिया जाने लगा है। आमने-सामने की बातचीत में, जिसमें व्यक्ति से व्यक्ति की परस्पर संसक्तता है, उसमें प्रभावी सम्प्रेषण अकेली भाषा से नहीं होता, कभी इशारों से कभी चेष्टाओं से, कभी कुछ अव्यक्त अव्याकृत ध्वनियों से (जैसे हँसी, कराह, रुदन, रस) भी सहायता लेनी पड़ती है। कभी-कभी आँखों-आँखों के सहारे ही सन्देश न केवल पहुँच जाता है, सन्देश का उत्तर भी मिल जाता है। संकेतों का उपयोग भाषा के विकल्प के रूप में मनुष्य ने आदिम युग से ही शुरू कर दिया, जब एक पहाड़ी पर आग जलाकर दूसरी पहाड़ी तक सन्देश प्रेषित किया जाता था, विशेष संकट की सूचना या विशेष हर्षप्रद घटना की सूचना आग के विविध प्रतिरूपों से दी जाती थी। पर आग का आविष्कार भी भाषा के आविष्कार का अनुवर्ती है। क्योंकि आग और भाषा दोनों समूह-जीवन और समूह अन्तर्वर्त्तन की अपेक्षा करते हैं और समूह मे जीना भाषा की और आग की अपेक्षा करता है। भाषा का आविष्कार पहले हुआ, उसके बाद आग का। आग के बिना गुफा के अन्धकार में एक दूसरे का चेहरा देखना सम्भव नहीं था और चेहरे देखे बिना ठीक तरह से संलाप सम्भव नहीं था। भाषा और आग के आविष्कारक मनुष्य ने आग से भाषा का काम लिया, उसके परिष्कृत चिन्तन में भी अग्नि ही देवताओं का पुरोहित बना, वही देवता और मनुष्य के बीच की कड़ी बना, अग्नि और वाक् दोनों विराट् पुरुष के मुख से उत्पन्न हुए माने गये। दोनों में संयोजन की सान्निध्य की सम्भावना पहचानी गई। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि आग से भाषा का कार्य लिया गया। धीरे-धीरे रंग बिरंगे झंडों से संकेतप्रेषण का विकास हुआ, फिर सीढ़ियों से, फिर जब और दूर सम्प्रेषण के लिए तार का आविष्कार हुआ तो ठोस संकेतों का विकास हुआ, जिसमें आघात-ध्वनियों को एक प्रतिरूप में बाँधा गया। ध्वनि-लहरियों को विद्युत-लहरियों में रूपान्तरित करने की विधि ज्ञात होने

पर दूर तक भाषिक सम्प्रेषण सुकर हो गया। अब तो भाषा के साथ-साथ भाषा बोलने वाले को भी टेलीफोन करते समय देखना सम्भव हो गया है। यही नहीं अनुपस्थिति में भी यहाँ तक कि मृत्यु के बाद भी व्यक्ति का सन्देश-सम्प्रेषण सम्भव हो गया है। स्व० श्रीमती इन्दिरा गाँधी की आवाज़ करोड़ों लोगों तक महीनों से पहुँचाई जा रही है, और उस आवाज के पहुँचाने का काम उठाया जा रहा है। मनुष्य ने सम्प्रेषण के इतने स्तर, इतने प्रकार अब आविष्कृत कर लिए हैं कि भाषा स्वयं सम्प्रेषण से, विशेष रूप से समूह संचार साधनों द्वारा सम्प्रेषण से, अभिभूत हो गई है। टेलीविजन ने तो परिवारों में भाषाहीनता की स्थिति उत्पन्न कर दी है, व्यक्ति से व्यक्ति की बातचीत एकतान टेलीविज़न-दर्शन-श्रवण में डूब गई है। अब तकनीक ही विश्वभाषा बन गई है। एलूल (Gacques Ellul) ने अपनी पुस्तक "दि टेक्नालाजिकल सोसायटी" नामक पुस्तक में इसी तथ्य को निरूपित करते हुए लिखा है कि आज का आदमी अपने पड़ोसी की बात नहीं समझ सकता क्योंकि उसका व्यवसाय उसका समूचा जीवन बन गया है और उसके जीवन के तकनीकी अतिविशेषीकरण ने उसे विवश कर दिया है कि वह एक बन्द संसार में रहे। इसी से वह दूसरों की शब्दावली नहीं समझ पाता, न दूसरों के अन्तर्निहित अभिप्राय ही समझ सकता है, ...अब तकनीकी ही मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाला सूत्र है।[1] ऐसी स्थिति में पहुँचने पर भाषा, भाषिक सम्प्रेषण और वैयक्तिक भाषिक सम्प्रेषण की बात कुछ अधिक चिन्ता की बात हो गई है।

यह भूमिका डराने के लिए नहीं है, सम्प्रेषण की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए है। पहले हम भाषा के प्रयोजन की बात से शुरू करें। यह सही है कि कभी-कभी शब्द यों ही निरुद्देश्य मुँह से निकलते हैं, कभी-कभी शब्द भी नहीं निरर्थक ध्वनियाँ निकलती हैं, इस भाषिक व्यापार का कोई उद्देश्य नहीं होता, जैसे आदमी कागज़ पर रेखाएँ खींचता है, केवल क्रीड़ा करता है परन्तु अधिकांश भाषा व्यवहार सप्रयोजन होता है। इसी से मनुष्य अपने भाषिक व्यवहार की सफलता-विफलता माप सकता है। कैसे माप सकता है, माप की क्या कसौटी होगी, यह बात कुछ देर के लिए अलग रख दें, पहले जाँचें कि भाषिक व्यवहार की उपलब्धि क्या क्या हो

---

1. The man of today is no longer able to understand his neighbour because his proffession is his whole life, and the technical specialization of his life has forced him to live in a closed universe He no longer understands the vocabulary of the others. Nor does he comprehend the underlying motivations of the others..... ... .technique has become the bond between men

(G. Ellul—The Technological Society P. 132)

सकती है। हम सूचना देने के लिए भाषा का व्यवहार कर सकते हैं, धोखा देने के लिए कर सकते हैं, मित्रता दिखाने के लिए कर सकते हैं, सामाजिक तनाव दूर करने के लिए कर सकते हैं, अपने आवेगों का तनाव शिथिल करने के लिए कर सकते हैं। पर इन सब उपलब्धियों के पीछे कोई एक उद्देश्य भी तो होगा, ये सब उपलब्धियाँ उस एक उद्देश्य की आनुषंगिक उपलब्धियाँ होंगी। जैसे बटन दबाते हैं तो बिजली की रोशनी होती है, पंखा चलता है, टेलीविजन सेट पर दृश्य आना शुरू हो जाता है, टेपरिकॉर्डर बजने लगता है, कमरा ठंडा हो जाता है, गरम हो जाता है, पर वास्तविक काम बटन का कुछ और है, वह है शक्ति-संचरण को प्रेरित करना, उसी तरह भाषा भी एक साधन है, जिसके व्यवहार का मुख्य उद्देश्य है सम्प्रेषण और सम्प्रेषण के अनुवर्ती रूप में नाना प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं। बटन दबायें, हो सकता है बल्ब न जले, आप किसी से कहें कि पानी लाना, पर पानी न लाये, इससे बटन ने काम नहीं किया या भाषा ने सम्प्रेषण नहीं किया, यह नहीं कहा जा सकता। सम्प्रेषण हुआ, उसका ग्रहण भी हुआ, पर ग्राहक की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं हुई, ग्राहक में क्रिया शक्ति का अभाव रहा हो या ग्राहक मनुष्य हो तो अनिच्छा रही हो। भाषा का काम सम्प्रेषण है और प्रभावी सम्प्रेषण है, जिसके दबाव में अनुनय, विनय, प्यार, धमकी, डाँट-फटकार आदि विभिन्न स्तरों की भाषिक अभिव्यक्ति भी सम्प्रेषण का अंग बनती है। 'पानी लाना" से काम नहीं चलता, "शाबाश, कैसी रानी बेटी है, मेरे लिए पानी लाकर अभी दे देगी" या "क्या मुँह बाये खड़े हो, सुन नहीं रहे हो, पानी लाने को कह रहा हूँ" या "बहुत प्यास लगी है भाई", जैसे विभिन्न वाक्यों के प्रयोग विभिन्न वक्ता-श्रोता परिस्थितियों में आवश्यक हो जाते हैं। इसी प्रकार एक ही वाक्य विभिन्न वक्ता-श्रोता परिस्थितियों में अनेक अर्थ देता है, कोई मित्र मुझसे पूछता है 'क्या कर रहे हो' तो स्पष्ट है कि वह सूचना माँग रहा है कि आजकल क्या लिख पढ़ रहे हो, किस व्यवसाय में हो आदि-आदि, पर जब अध्यापक कक्षा में आता है और कहता है 'क्या कर रहे हो' तो वह कार्य की सूचना नहीं चाहता, वह जो किया जा रहा है, उस पर रोक लगाता है, पर जब डॉ० बाल गोविन्द मिश्र अपने वैयक्तिक सहायक से इंटरकॉम पर पूछते हैं, क्या कर रहे हो तो उनका अभिप्राय यह होता है कि मुझे कुछ लिखाना है, तुम्हारी जरूरत है, आ जाओ। तात्पर्य यह है कि भाषिक सम्प्रेषण में भाषा ज्ञान ही काफी नहीं है, भाषिक स्थिति का ज्ञान भी अपेक्षित है। यहीं पर एक प्रश्न उठता है कि क्या भाषा सदा सम्प्रेषण की ही भूमिका निभाती है, क्या भाषा कभी-कभी अभिव्यक्ति मात्र नहीं होती? रेल के डिब्बे में दो अपरिचित यात्री बैठे हैं, एक कहता है, मौसम यकायक गरम हो गया है, तो क्या वह यह सूचना सम्प्रेषित करने के अभिप्राय से कहता है या उस यात्री से बातचीत करने के अभिप्राय से एक ऐसी बात कहता है, जो उसे मालूम है, पर उस बात से उसका मुँह खुले। दूसरे शब्दों में बहुत सारी बातें बातें निकालने के लिए होती

हैं, परिचय या सानिध्य प्राप्त करने के लिए होती हैं। मैलिनाव्स्की ने इसी को **वाचिक सम्मिलन** (Patic Communion) की संज्ञा दी है और कहा है कि "मुक्त, निरुद्देश्य सामाजिक सहालाप में जो भाषा व्यवहार होता है उस पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जब कुछ लोग अलाव के पास दिन भर के श्रम के बाद बैठते हैं, बात करते हैं या जब हाथ से काम करते समय अपने काम से असम्बद्ध बातों के बारे में कुछ गपशप करते हैं, तब हमें भाषा-प्रयोग से एक बिल्कुल अलग प्रकार से सरोकार होता है। भाषा के एक अलग तरह से प्रकार्य का दर्शन होता है। भाषा इस स्थिति में जो घट रहा है, जो घटमान है, उस पर अवलम्बित नहीं है, वह परिस्थिति के सन्दर्भ से एक तरह से बिल्कुल कटी हुई है। वक्ता-श्रोता क्या कर रहे हैं, उसकी, सोद्देश्यता से भाषा की साभिप्रायता का कोई सम्बन्ध नहीं रहता" इस प्रकार भाषा व्यवहार की दो स्थितियाँ हैं, एक तो जहाँ भाषिक परिस्थिति का सन्दर्भ भाषा व्यवहार का नियन्त्रक होता है, इस परिस्थिति में वक्ता-श्रोता, वक्ता-श्रोता का परस्पर सम्बन्ध, देश-काल, पूर्वकथन, भाषिक व्यवहार के पीछे वक्ता का अभिप्राय (Intention), दूसरे श्रोता की सन्निविष्ट ये सभी बातें सन्निहित हैं सभी एक साथ हों आवश्यक नहीं, पर दो तीन तो अवश्य रहते ही रहते हैं। दूसरी परिस्थिति है जहाँ परिस्थिति से भाषा निरपेक्ष है, पर वह निरी भाषा है, निरी संयोजिका है, समूह के सम्मिलनभाव की प्रेरिका है, वह बात नहीं है, बतरस है। ऐसे बतरस का वर्णन रसपूर्वक भवभूति ने किया है—

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा—
दविरलित कपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिल परिउम्भव्यापृतैकेक दोवणो—
रविदितगतयामा रात्रिरंव व्यरंसीत्।

—उत्तर रामचरित अंक 9

---

1. The case of language used in free, aimless, social intercourse requires social consideration. When a number of people sit together at a village fire, after all the daily tasks are over, or when they chat, resting from work. or when they accompany some mere manual work by gossip quite unconnected with what they are doing-it is clear that here we have to do with another mode of using language, with another type of speech function. Language here is not dependent upon what happens at that moment, it seems to be even deprived of any context of situation. The meaning of any utterence can not be connected with the speakar's or heareser's behaviour, with the purpose of what they are doing.

(B. Malinawski—phatic Communion—excerpt in Communication Face to Face Interaction. P. 149).

धीमे-धीमे स्वर में बातचीत का सिलसिला बल्कि यों कहें बिना सिलसिले की बातचीत चल रही है। कोई ओर-छोर नहीं, गाल से गाल सटे हुए, बाहों में बाहें कसी हुईं, रात ही चुक जाती है, बातें नहीं चुकतीं। "इसे संयोग शृंगार का अद्वितीय निदर्शन माना गया है, अर्थात् घनिष्ठतम सान्निध्य या परस्पर एकात्मता की स्थिति में बात का ही शुद्ध अर्थ है, बात में क्या है, इसका कोई अर्थ नहीं।" यहाँ बात अर्थ का नहीं आत्मीयता का माध्यम है, जिसमें सुनाने वाला, सुनने वाला ये दो नहीं हैं एक हो गये हैं।

दोनों परिस्थितियों की भाषा एक नहीं होती, व्याकरण की दृष्टि से और कोश की दृष्टि से दोनों में से कोई अनर्गल या विशृंखल नहीं होतीं, पर दोनों में गुणात्मक अन्तर सम्प्रेषण की सोद्देश्यता या निरुद्देश्यता में आता है और वह अन्तर भी किसी न किसी रूप में भाषा में ही परिलक्षित होता है। एक घटना का विवरण सूचना के रूप में दिया जाता है तो उसका क्रम अलग होता है, उसमें सूचना देने वाला सूचना प्राप्त करने वाला और सूचना देने की स्थिति सबका दबाव रहता है, अतः भाषिक सूचना का गठन उसी के अनुकूल तर्कबद्ध होता है, घटना में दोनों पक्ष सक्रिय रूप से संसक्त रहते हैं।

वही घटना अनायास बातचीत का विषय बनती है। दो व्यक्तियों के बीच जब वे नदी किनारे सैर कर रहे हैं, एक दूसरे में डूबे हुए, तब वह घटना तिरोहित हो जाती है, घटना में कोई रुचि नहीं रहती, इसलिए यदि उसके बयान में क्रम-भंग है तो वह परिलक्षित नहीं होता, कोई बात असम्भव या असंगत है तो उस पर भी ध्यान नहीं जाता। शब्द तो प्रायः वही रहते हैं पर शब्द ही अर्थ भी हो जाते हैं उनके अलग अर्थ अन्वेषण का न प्रयत्न होता है, न चिन्ता। इस दूसरी परिस्थिति को आमने-सामने रखकर ही पहली परिस्थिति का जायज़ा लिया जा सकता है, इसीलिए इतने विस्तार में इसकी चर्चा की गई है, सम्प्रेषणात्मक व्याकरण इस दूसरी परिस्थिति पर लागू नहीं होता।

पहली परिस्थिति पर लौटें जहाँ भाषा सप्रयोजन है। मैंने सम्प्रेषण की सफलता-विफलता के परिमापन की बात उठाकर छोड़ दी थी, किस तरह सम्प्रेषण सफल हो, भले ही उससे अभीष्ट कार्य सिद्ध हो न हो, यही उद्देश्य सामने रखकर हम सम्प्रेषणात्मक व्याकरण का साँचा खड़ा कर सकते हैं। एक उदाहरण से बात स्पष्ट करना चाहूँगा। बचपन में बताया जाता था कि गुरुजनों को पत्र लिखो तो श्रीचरणेषु प्रणाम से शुरू करो और अन्त में विनीत, अनुगत, प्रणत लिखकर अपना नाम दो, सम्बन्धियों को पत्र लिखो तो "स्वस्ति श्री सर्वोपमायोग्य श्री अमुक समस्त परिवार को इतं अमुक सपरिवार के प्रणामशीष यथायोग्य प्राप्त हों" ऐसे शुरू करें और "इतिशुभम्" "शमिति" से अन्त करें, स्नेहभाजन जनों को पत्र लिखें तो

स्वस्ति । "चिरंजीविषु शुभाशिषः" से शुरू करे और शुभेच्छु लिखकर अपना नाम दे। बराबर के लोगों से प्रियवर, बन्धुवर, भाई सम्बोधन के साथ नाम दे । यदि कुछ औपचारिकता भी निभानी हो, अन्यथा नाम न दें, प्रिय के साथ नाम दें, अधिक औपचारिकता में नाम के आगे श्री भी लगायें, और अन्त में जी भी । अन्त "सस्नेह" से या भवदीय या त्वदीय, आपका या तुम्हारा से करें । एक ही सूचना इन चार स्तरों के व्यक्तियों के पास भेजनी है तो भी सम्बोधन प्रकार के ये भेद आवश्यक हो जाते हैं, उसके बिना सन्देश-ग्रहण तो होगा पर प्रभावी नहीं होगा । सम्बोधन प्रकार में केवल सामाजिक मर्यादा ही नहीं प्रतिबिम्बित होती, सामाजिक मूल्यबोध भी प्रतिबिम्बित होता है । अंग्रेजी में "माई डियर" या 'डियर" स्त्री-पुरुष सबको धड़ल्ले से लिख लें पर हिन्दी में स्त्री को पत्र लिखते समय नाम के पहले प्रिय श्री या प्रिय अमुक जी लिखते समय सहज संकोच होता है, हिन्दी का सांस्कृतिक मूल्यबोध इस स्त्री-पुरुष-अद्वैत की अनुमति नहीं देता ।

सम्बोधन प्रकार का और वक्ता और बोद्धव्य या सम्बोध्य के लिए सार्वनामिक विकल्पों में से किसी एक का चयन, या दूसरे शब्दों में वक्ता श्रोता की भूमिका का ध्यान तो केवल एक पक्ष है सम्प्रेषण की सफलता की कसौटी का । ऐसे अनेक पक्ष हैं जिनका वस्तुपरक अध्ययन किया जा सकता है । जांस एलबुड ने अपने निबन्ध "पावर एण्ड कम्यूनिकेशन" में छः पैमाने निर्धारित किये हैं किसी भी **क्रिया कलाप** की सफलता को मापने के लिए—

1. क्रिया का लक्ष्य पूरा हुआ या नहीं ।
2. क्रिया से सम्बद्ध लोगों की भूमिकाओं का निर्वाह हुआ या नहीं ।
3. क्रिया का स्वरूप और उसके साधनों का उपयोग उसके अनुकूल है या नहीं ।
4. देशकाल जैसे सन्दर्भगत घटक कारणों पर उचित ध्यान दिया गया या नहीं, और साथ ही क्रिया से सम्बद्ध विश्वासों और मूल्यों का ध्यान रखा गया या नहीं ।
5. क्रिया का परिणाम अभीष्ट मिला कि नहीं । तथा
6. ऊपर 1 से 5 तक के पैमानों की पद्धति परम्परा द्वारा स्वीकृत है या नहीं । (Alvan, Publication 1980, पृष्ठ 6) ।[1]

---

1. The most important parameters that determine a certain type of activity are the following—
(i) The purpose or goal of the activity.
(ii) The set of roles belonging to the activity.
(iii) The behaviour and the instruments with which the activity is pursued.
(iv) Contextual factors such as time and place of activity and beliefs and values attached to the activity.
(v) The results of the activity.
(vi) The conventional procedures relating and determining (i)--(v) (I. Allwood-Alvan).

एलवुड ने इस निबन्ध में व्यवहारगत भूमिका की शक्ति की बात विशेष रूप से की है, शक्ति दो रूपों में परिलक्षित होती है, नियंत्रक होकर या संकोच-रहित होकर। शक्तिमान व्यक्ति कम शक्तिमान के ऊपर हावी रहता है, उसकी भाषिक अभिव्यंजना आज्ञा देने वाले कर्ता के रूप में या प्रेरणा देने वाले के रूप में या जाँच कर्ता के रूप में या निर्णेता के रूप में या विश्वास व्यक्त करने वाले के रूप में होती है या फिर होती है संकोच रहित अभिव्यक्ति के द्वारा। इसके विपरीत कम शक्तिमान या विनेय व्यक्ति विनय और संकोच के द्वारा अपनी भूमिका की सूचना देता है। सार्वनामिक प्रयोग तू, तुम या आप (सम्बोधन के लिए) और हम या मैं (सम्बोध्य के लिए) तो ज्ञापक होते ही हैं, वाच्य-प्रयोग भी किसी-किसी भाषा में ज्ञापक होता है। (जैसे हिन्दी में, संस्कृत में कर्मवाच्य विनेय वक्ता का सूचक होता है), इनके अलावा कभी-कभी अचानक भूमिका परिवर्तन की सूचना उल्टी-पुल्टी अप्रासंगिक बातों से दी जाती है। उदाहरण के लिए सूर का प्रसिद्ध पद लें—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी है बेटी देखी नहीं कतहुं ब्रजखोरी।
काहे को हम ब्रजतनि आवति, खेलत रहत आपनी पौरी।
सुनति रहति स्रवननि नंद ढोटा करत फिरत माखन दधि चोरी।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहे खेलन चलहु संग मिलि गोरी।
सूर स्याम प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरइ राधिका भोरी।

इस पद में श्रीकृष्ण के प्रश्न में एक शक्तिमान का स्वर है, तू कहाँ रहती है, किसकी बेटी है मैंने तुझे कहीं देखा नहीं। कौन है तू गोरी, अभी तक श्याम रस में रंगी नहीं। बड़ी चुनौती है, एक साथ अनेक प्रश्न। उत्तर देने वाली राधा कुछ अधिक तेजस्वी है, वह अपेक्षित उत्तर नहीं देती कि मैं कौन हूं, किसकी बेटी हूं। सीधे अन्तिम बात को पकड़ती है, ब्रज की गलियों में कभी दिखाई नहीं पड़ी और अधिक शक्तिशाली स्वर में कहती है, हम क्यों ब्रज में आने लगें। (मैं के स्थान पर ध्यान दें हम का प्रयोग है) अपने दरवाजे पर खेलती रहती हैं, हाँ! कानों से सुनती रहती हूँ कि नन्द का लड़का माखन दधि चुराता-फिरता है। अब यह बात नितान्त अप्रासंगिक है पर प्रभुता की सूचना अन्य पुरुष के प्रयोग से प्रकट हो जाती है, जिस प्रकार श्रीकृष्ण राधिका को जानते हुए भी अनावश्यक प्रश्न करते हैं उसी प्रकार राधिका भी जानती हुई भी कि श्रीकृष्ण प्रश्न कर रहे हैं, उन्हें अन्य पुरुष बता देती है। फिर भूमिका परिवर्तित होती है और श्रीकृष्ण क्षमायाची हो जाते हैं। तुम्हारा भला क्या चुरा लेंगे, चलो हम दोनों साथ खेलने चलें, इस विनय में एक छल है और उनकी प्रभुता अपने आप पहले ही की गई पेशबन्दी में कि "संग मिलि गोरी"

तुम मेरी जोड़ी हो गई स्थापित हो जाती है और भोली-भाली राधिका अपनी बातों के जाल में कि कोई चुराता फिरता है स्वयं फँस जाती है, उसकी तेजस्विता, उसकी प्रभुता ही उसे अकिंचन बना देती है। यह सब हल्के भाषिक संकेतों से ज्ञापित होता रहता है।

शक्ति की भूमिका से अलग वक्ता की निरपेक्ष सम्प्रेषण-भूमिका भी है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में "गतोस्तमर्कः (शाम हुई) का उदाहरण दिया जाता है ? यही वाक्य दुकानदार कहता है तो उसका अभिप्राय होता है, दुकान बढ़ाने का समय हो गया प्रोषित पतिका अपनी सखी से कहती है तो अभिप्राय होता है आज का दिन भी प्रतीक्षा में गया, प्रिय नहीं आये, मुनि कहते हैं तो अभिप्राय होता है कि अब सन्ध्या-वन्दन का समय हुआ। इसी के साथ बोद्धव्य या सम्बोध्य की भी निरपेक्ष भूमिका होती है, बच्चे से कहा जाय "बदमाश कहीं का" तो प्यार जतलाना होगा और अगर यही वाक्य बड़े से सम्बोधित हो तो अनर्थ हो जाय। वक्ता और बोद्धव्य के अलावा महत्वपूर्ण भूमिकाएँ देश-काल की होती हैं। आप कब और कहाँ बात कर रहे हैं यह बात स्पष्ट रूप से सम्प्रेषित होती है, श्रीमान या हुजूर से वाक्य शुरू हो और उसके अनुतान में व्यंग का आभास न हो तो निश्चय ही एक ऐसे परिवेश में होगा, जहाँ औपचारिकता अपेक्षित है, वह घर नहीं है। किसी सम्बन्धी के यहाँ मृत्यु हुई हो और आप सम्वेदना व्यक्त करने पहुँचें तो आप साधारण व्यवहार द्वारा अपेक्षित कुशलमंगल से बात नहीं शुरू करेंगे। देश-काल को इससे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका है, पूर्ववर्ती वाक्य की यदि बातचीत पहले से शुरू है और प्रारम्भिक शब्द या आरम्भिक पदबन्ध की यदि बातचीत शुरू की जा रही है। वाक्य की अनुवृत्ति कितनी महत्वपूर्ण है इसका स्पष्टतम प्रमाण "हाँ" या "नही" उत्तर वाले एक शब्दीय वाक्यों में मिलता है, वहाँ बिना पूर्ण प्रश्न के "हां" या "नहीं" का कोई अर्थ नहीं निकलता। जब दो तीन भूमिकाओं का एक साथ दबाव पड़ता है तो सम्प्रेषण जटिल हो जाता है। एलवुड ने पूर्वोद्धृत लेख में एक उदाहरण ऐसी परिस्थिति का दिया है, अध्यापक एक टेप बजाते हैं, जिसमें उच्चारण उपहसनीय है, छात्र हँसते हैं अध्यापक पूछता है किस बात पर हँस रहे हो ? छात्र समझता है कि छात्र-अध्यापक-परिस्थिति में हँसना वर्जित है, वह संकोच पूर्वक उत्तर देता है, नहीं, किसी बात पर नहीं। अध्यापक पूछते हैं, मैं सुन नहीं पाया, तुमने क्या कहा। छात्र फिर दुहराता है, किसी बात पर नहीं। अध्यापक फिर उकसाता है तुम्हें हंसी बिना बात की बात पर आई, पूरे वार्तालाप में कई भूमिकाओं के संश्लिष्ट होने के कारण छात्र प्रश्न का उत्तर जानते हुए भी संकोचवश कतराता रहता है, वह अध्यापक का अभिप्राय नहीं पकड़ पाता।

शायद भूल अध्यापक से ही हुई। उसे पहले ही कहना चाहिए था, कि मैं टेप सुना रहा हूँ इसे ध्यान से सुनो, इसमें क्या अटपटापन है इस पर ध्यान दो, तब टेप

सुनाये और पूछे कि टेप को सुनकर तुम्हें किस बात पर हँसी आई, तब सम्प्रेषण पूरा होता और असन्दिग्ध होता । वाक्य की अपर्याप्तता ऐसी परिस्थिति में बहुत भ्रम का कारण बन जाती है । यही नहीं वाक्यों के बीच के विराम वाक्यों के बीच दूसरे पक्ष की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करते हैं, तभी ठीक सम्प्रेषण होता है । स्व० बाबू सम्पूर्णानन्द को जो निकट से न जानता वह यही प्रभाव लेकर जाता कि बड़े व्यक्ति हैं, बड़े काम-काजी । एक बार उनके दामाद पहुँचे, शायद विवाह के बाद पहली बार आये थे, प्रणाम किया, बाबूजी ने एक साँस में कई प्रश्न पूछ डाले—कब आये, कहाँ से आ रहे हैं, कब तक रुकोगे, यहाँ से कहाँ जाओगे, उन्होंने किसी के भी उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की, इस आकस्मिक बौछार की प्रत्याशा नए दामाद को नहीं थी । वे उसी दिन नाराज़ होकर चले गये, जब बाबूजी से बतलाया गया तो उन्हें लगा कि तेजी से सब काम करने की आदत महँगी पड़ी । इसके अलावा स्वयं प्रोक्ति में भी वक्ता का प्रस्ताव विवक्षित मात्र नहीं रहता, वह लक्षित होता है भाषिक संकेतों से । बच्चे तक यह जानते हैं कि बिना रोये कैसे अपनी बात मनवाई जा सकती है, कहेंगे, अम्मा तुम बहुत अच्छी हो (यानी इसके पहले अम्मा अच्छी नहीं थीं, या बिना इस प्रमाणपत्र के अम्मा अच्छी नहीं होंगी) प्यारी अम्मा हो । अम्मा भी जानती है क्यों चोन्हा किया जा रहा है । यह पेशबन्दी है किसी ऐसी वस्तु के मँगाने के लिए या कहीं खेलने जाने के लिए जिसकी अम्मा साधारण स्थिति में अनुमति नहीं देतीं । रीझ जाती हैं और बात मान लेती हैं । इसीलिए भाषा में बहुत कुछ हिस्सा ऐसा होता है, जो अतिरिक्त होता है, अर्थ की दृष्टि से उसका उपयोग नहीं है, पर सम्प्रेषण की प्रक्रिया की दृष्टि से अवश्य उसका सार्थक उपयोग होता है ।

सम्प्रेषण की प्रक्रिया सूचना देने की स्थिति में सरलतम होती है, क्योंकि उसमें पूर्वोक्त परिस्थितियों की भूमिका न्यूनतम होती है, पर तब भी वक्ता-बोद्धव्य का सम्बन्ध परिलक्षित हुए बिना नहीं रहता । संवेगात्मक स्थिति में यह प्रक्रिया कुछ अधिक जटिल हो जाती है, क्योंकि तब शब्दों के बीच में अन्तराल आने लगते हैं, बहुत सारे शब्द कण्ठ तक आकर रह जाते हैं, आधी बात 'नैननि' और आधी बात 'सैननि' होने लगती है, कभी-कभी तो 'बैननि' की भूमिका कुछ संज्ञा विशेषण और सर्वनामों तक ही सीमित हो जाती है, कभी केवल अव्यय या न—न जैसे नियति ही पर्याप्त होते हैं, तब भाषिक रचना में अधिक अप्रत्याशितता आ जाती है और तब भाषेतर तत्वों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है । सम्प्रेषण की प्रक्रिया सबसे अधिक जटिल होती है । इसके तीन कारण हैं, एक तो इसकी सम्प्रेषण वस्तु संवेगात्मक होती है, दूसरे इसका न तो सम्बोध्य कोई एक व्यक्ति होता है, न इसका सम्बोधक ही व्यक्ति होते हुए भी व्यक्ति की भूमिका में अपने को रखकर सम्बोधक होता है । तीसरा कारण यह है कि इस प्रकार के सम्प्रेषण में समय एक दूसरे चौखट

में स्थापित होता है, दिन भर का कार्य-कलाप एक पंक्ति में आ सकता है या पूरा उपन्यास दिन भर की कथा में समाप्त हो सकता है, समय का ठहराव और समय का द्रुत धावन दोनों भाषा पर अपनी-अपनी तरह के दबाव डालते हैं। "उसने कहा था" कहानी में एक क्षण की मुठभेड़ के लिए लम्बी भूमिका बाँधी गयी है और बरस पर बरस बीत जाते हैं, उनके लिए एक शब्द नहीं, पहली और दूसरी भेंट में लम्बे अन्तराल को बींध कर एक पंक्ति आती है, 'तेरी कुड़माई हो गई', 'हो गई', देखते नहीं यह कढ़ा हुआ सालू। और आगे का जीवन पूरा अपने प्रकाश के घेरे में ले लेती है, 'बोधासिंह को तुम्हें सौंप रही हूँ'। साहित्य के सम्प्रेषण का समाधान कभी भी आसान नहीं होता, क्योंकि सम्प्रेषणकर्ता की एक प्रकार की आनुष्ठानिक मात्र नहीं सत्तात्मक मृत्यु अपेक्षित होती है, वह अपने अनुभव के ताप से गुज़र कर उस अनुभव की परख करता है, क्या यह मेरा अकेला अनुभव है, क्या मैं यह अनुभव अपने पास तक ही रख सकता हूँ, क्या समाज इसका साझीदार नहीं है और अगर है तो वह कौन सी भाषा होगी, जिसमें यह उस समाज को सम्प्रेष्य हो, जो ठीक आमने-सामने नहीं है (जैसा कि कभी "पारस्परिक समाज" में रहता था)। उस समाज की भाषिक संवेदना किस प्रकार की है, इस परख का अर्थ होता है अपने व्यक्ति को छाँटते जाना, उतना ही अवशिष्ट रखना, जो समाज के साथ समरस है, एकचित्र है। ऐसी स्थिति न आये तो सम्प्रेषण का कार्य नहीं हो सकता। इस स्थिति के आने के कारण जो साधारणीकरण का व्यापार रचनाकार के भीतर चलता है, उसमें शब्द की धार बहुत पैनी हो जाती है। इसी से शब्द और संदेश समान महत्व प्राप्त कर लेते हैं, दोनों में तादात्म्य न हो तो संवेगात्मक प्रतिक्रिया बहुत सतही होगी। शब्द की अद्वितीय महत्ता चयन, विचलन, बहुदिशीयता, स्वचनशीलता जैसे गुणों से प्राप्त होती है। परन्तु हर रचनाकार को समाधान अपने लिए अलग तलाशना होता है, कोई भी बना बनाया फार्मूला काम नहीं करता, अतः साहित्यिक सम्प्रेषण का नियम निर्धारित करना कठिन ही नहीं, लगभग असम्भव है "नियम व्याप्ति के आधार पर बनते हैं, पर साहित्यिक भाषा के सन्दर्भ में कोई व्याप्ति बनती नहीं दिखाई देती, जो व्याप्ति दिखती है, वह कालान्तर में कवि विशेष द्वारा तोड़ दी जाती है। उदाहरण के लिए कोमल भावों की अभिव्यंजना में मूर्धन्य वर्ण बाधक माने जाते हैं, पर पद्माकर की निम्नलिखित पंक्ति में मूर्धन्य वर्णों की पुनरावृत्ति कोमलभाव की अभिव्यंजना में अधिक उपकारक सिद्ध होती है—

आगे नन्द रानी के तनक पय पीवे मीन
तीन लोक ठाकुर सो ठुनकत ठाढ़ो है।

अपने प्रस्तुत व्याख्यान में मैं साहित्य की भाषा का सम्प्रेषणात्मक व्याकरण इसी से प्रस्तुत करने का विचार त्याग रहा हूँ। ऐसे व्याकरण की रूपरेखा बना भी

लें, तो उससे साहित्य का उपकार न होगा, क्योंकि साहित्य की समझदारी के लिए भी सामान्य भाषा की गहरी जानकारी, साहित्य की भाषा के पठन-पाठन का अभ्यास और उसके लिए रुझान तथा मानवीय संवेदना, ये पर्याप्त हैं। अपने अंतिम व्याख्यान में मैं सामान्य भाषा के रूप में प्रयुक्त हिन्दी के सम्प्रेषणात्मक व्याकरण का एक ढाँचा प्रस्तावित करूँगा।

पर सम्प्रेषण की जिस समस्या का उल्लेख प्रारम्भ में मैंने किया, उसकी ओर पुनः ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। तकनीकी विकास के दबाव में दो बातें बिल्कुल सामने आ गई हैं, एक तो समूह संस्कृति की अनिवार्य परिणति एकरूपता भाषा में भी आने लगी है, समूह संचार साधनों और संगणकों के उपयोग बढ़ने के साथ ही भाषा का वैविध्य, भाषा में परिवर्त्यों के अनुसार भाषा में सामाजिक स्तर-भेद, ये सब धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। कोई आश्चर्य नहीं, विश्व में बोलियाँ इतिहास की बात हो जायें, और अधिकांश भाषायें भी विलुप्त होती चली जायें कुछ इनी-गिनी भाषाएँ रह जायें और उनका भी रूप बहुत कुछ स्थिरीकृत हो जाय। इस सम्भावना का एक नज़ारा आॅर्थर सी. क्लार्क ने अपनी पुस्तक "प्रोफाइल्स आॅफ फ्यूचर" नामक पुस्तक में इस प्रकार चित्रित किया है, सभी मनुष्य (जहाँ कहीं के वे हों) एक ही विशाल सम्प्रेषण प्रकार के उपयोग का बराबर अवसर प्राप्त कर लेंगे, वे अनिवार्यतः विश्व-नागरिक बन जायेंगे और भविष्यत् युग की एक बड़ी समस्या यह होगी कि कैसे मूल्यवान और रोचक क्षेत्रीय वैशिष्ट्यों की रक्षा की जाय। विश्वस्तरीय सपाटी-करण का बहुत गम्भीर संकट सामने है, शिखरों को तोड़कर खाइयों को पाटकर समतल करने का विचार त्यागना होगा। (पर क्या एक बार रोलर चल जाय तो उसे रोका जा सकेगा)। विश्वस्तरीय सम्प्रेषण-व्यवस्था भाषा को बहुत गहरे तौर पर प्रभावित करेगी। जैसा कि पहले सुझाया गया है, यह ऐसी स्थिति ला सकती है कि बस एक भाषा रह जाय, शेष उसकी बोलियाँ हो जायें।"[1] दूसरी

---

1. When all men, wherever they may be, have equal access to the same vast communications network, they will inevitably become citizens of the world, and a major problem of the future will be the preservation of regional characteristics of value and interest. There is grave danger of global leveling-down; the troughs in man's cultural heritage must not be filled at the price of demolishing the peaks.

The universal communication system will have a profound impact upon language. As already suggested it may lead to a single dominant tongue, others becoming merely local dialects.
(Arthur C. Clark-Profiles of the Future. P. 191-1982)

बात यह है कि जैसा पहले ही कह चुका हूँ, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच यन्त्र आ गया है, एक झीनी पारदर्शी चादर तन गई है, विद्युद्यांत्रिकी की। सीधे व्यक्ति-व्यक्ति में बातचीत एकदम कम हो गयी है। एक परिवार के सदस्य तक अब आपस में कलह करने के लिए भी भाषा का इस्तेमाल नहीं करते, क्योंकि घर पर टेलीविजनसेट के सामने मुनिया में (बिहारी के 'कहलाने के' स्थान पर)

"एकत बसत पति पत्नी सुत-माय। जगत तपोवन सों कियो टी. वी. सब पैं छाय।" देखने में लगता है कि भाषा हीनता से, इस मुनिव्रत से बड़ी शान्ति आ गई है, पर गहराई में जाकर सोचें तो यह भयावह स्थिति है और वैयक्तिक सम्पर्क-सूत्र के रूप में भाषा का स्थान इस प्रकार यन्त्र के द्वारा छीना जाना मनुष्य के विकास के लिए घातक हो सकता है। भाषा ही सोचने को उकसावा देती है। सोचने को आकार देती है और अगर अधिकांश सोचना दूसरे के द्वारा हो, समूह यन्त्र द्वारा हो, तो मनुष्य उस स्थिति में लौट जायेगा, जब भाषा नहीं थी, मनुष्य केवल अपने लिए जीता था, जब वह कुछ सोच नहीं सकता था। मनुष्य के आमोद-प्रमोद तक जब यांत्रिक हो जायेंगे तो वह जीवन का रस खो देगा, तब उसकी जिन्दगी भाड़े की जिन्दगी हो जायेगी। भाषिक सम्प्रेषण की बात करते समय इस भयावह सम्भावना को भी सामने रखना होगा और सोचना होगा कि वे कौन से उपाय हो सकते हैं, जिनमें मनुष्य वैयक्तिक सम्पर्क भाषा के द्वारा सम्प्रेषण की आवश्यकता महसूस करे और जिनसे विमानवीकरण की जड़ता तोड़ी जा सके। स्थिति की भयावहता पर एक टिप्पणी एलूल की देना चाहता हूँ—ज्याँ लालूप और ज्याँ नेलिस ने एक विचित्र आशावादिता के बारे में लिखा है कि रेडियो और टेलीविजन ने विघटमान कुटुम्बों को फिर से जोड़ दिया। टेलीविजन निस्सन्देह पति-पत्नी, बच्चों का भौतिक पुनर्मिलन समान कर रहा है। अब बच्चे शाम को घर से बाहर नहीं निकलते। परिवार के सदस्य निश्चय ही भौतिक रूप से एक ही कमरे में एक दूसरे के बिल्कुल आसपास मौजूद रहते हैं, पर उनकी आँखें, उनके काम टेलीविज़न पर ऐसे केन्द्रित रहते हैं कि वे एक दूसरे की उपस्थिति से लगभग बेखबर रहते हैं। यदि वे एक-दूसरे को समझ नहीं सकते एक-दूसरे को बर्दाश्त नहीं कर सकते, यदि उनके पास एक दूसरे से कुछ बात करने को नहीं रही तो रेडियो और टेलीविज़न यह सम्भव कर देते हैं कि बाह्य सम्बन्ध फिर से जुड़ जाये और कोई कलह या क्लेश न हो। इन तकनीकी साधनों का कृतज्ञ होना चाहिए कि इन्होंने परिवार के सदस्यों के बीच भी किसी प्रकार का अन्तर व्यवहार अनावश्यक और निष्प्रयोजन बना दिया है, अब यह भी ज़रूरी नहीं रह गया है कि आदमी सोचे कि पारिवारिक सम्बन्ध अब समान नहीं रहे। वस्तुतः अब कोई भी फैसला लेने की ज़रूरत नहीं रही। अब यह सम्भव हो गया है कि विवाहित जोड़ी

लम्बी अवधि तक बिना एक दूसरे से बात किये, मिले, पास देखे एक साथ टेलीविजन की गूंजभरी रिक्तता में रहे और उसे किसी रिक्तता का आभास तक न हो"[1]

इस भयावह तपोवनी शान्ति को तोड़े बिना सहज मनुष्य की वापिसी सम्भव नहीं और अपने देश में यह शान्ति पान की दूकान तक ही सीमित रहे तो कोई बात नहीं, पर यह घर-घर में बैठे इसके पूर्व भाषा से सरोकार रखने वाले व्यक्तियों संस्थाओं और सरकारों को गहराई से सोचना चाहिए कि जो भाषा अशिक्षित जन तक प्रसूत है, उसकी शक्ति का विधिवत परिमाप करे और समस्त व्यवहार चाहे वह राज्य-व्यवहार हो या साधारण या साहित्यिक, उस शक्ति की सम्भावनाओं का उपभोग-करे, भाषा नियोजन ऊपर से न होकर नीचे से हो। तब शायद ऊपर से आरोपित भाषा और मानक सम्बन्ध-निरपेक्ष भाषा का खतरा कुछ कम हो जाय। पूरी तरह कम तो यह खतरा तभी होगा, जब मनुष्य मानव की स्वाधीनता की चिन्ता करे और तकनीक को परिसीमित करने पर गम्भीरता पूर्वक विचार करे साथ ही समग्र जीवन की समरसता (एकरूपता) ही को लक्ष्य के रूप में स्वीकार करते हुए विकास के उपक्रम करे। यह सम्भव तभी होगा जब या तो महाविनाश उपस्थित हो जाय, या ईश्वर हस्तक्षेप करके मनुष्य की प्रकृति को नयी दिशा दे, या फिर अधिक से अधिक लोग जागरूक हों इन खतरों के प्रति जो तकनीकी समाज से मनुष्य की स्वाधीनता और उसके सहज स्वभाव के आगे आई है। अन्तिम सम्भावना ही हमारे हाथ में है, जो लोग अपने को प्रबुद्ध कहने का दावा करते हैं उनको मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि भाषा और साझेदारी की भावना (वस्तुतः दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं,) की रक्षा करनी है।

---

1. Jean Yaloup and Jean Nelis evince a curious optimism when they write that radio and television have reconstitutted the family Television daubtless facilitates material reunion. Because of it the children no longer go out in the evenings. The members of the family are indeed all present materially, but centered on the television set, they are unaware of one another. If they cannot stand or understand one another, if they have nothing to say, radio and television make this easy ta bear by re-establishing external relations and avoiding friction. Thanks to these technical devices, it is no longer necessary for the mambers of a family to have anything at all to do with one another or even to be concious of the fact that family relations are impossible. It is no longer necessary to make decisions. It is possible for a married couple to live together a long time without ever meeting each other in the resonant imptiness of television.

(J. Ellul—The Technological Society P. 378-9).

वस्तुतः सम्प्रेषण की समस्या मूलतः मानवीय समस्या है, आज इसका महत्व और अधिक इसलिए है कि मनुष्य की स्वाधीनता और सहज जीवन के साथ समरसता पर ही विश्व जीवन अवलम्बित है, और भाषिक सम्प्रेषण में शुचिता, सत्यता और अमृततुल्य मधुरता जीवन के लिए स्वच्छ हवा-पानी की तरह नितान्त आवश्यक है।

इस भूमिका के अनन्तर मैं अपने शेष दो व्याख्यानों में सम्प्रेषणात्मक व्याकरण की बात करूँगा। कल के व्याख्यान में प्राचीन भारतीय चिन्तन में सम्प्रेषणात्मक व्याकरण के बिखरे सूत्र को एकत्र करने का यत्न करूँगा, परसों के व्याख्यान में इन सूत्रों का उपयोग करते हुए हिन्दी के सम्प्रेषणात्मक व्याकरण के एक साँचे की रूपरेखा प्रस्तावित करूँगा।

सम्प्रेषण व्याकरण : भारतीय चिन्तन

मैं सम्प्रेपण विशेपत: भापिक सम्प्रेषण के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की चर्चा पहले करूँगा, क्योंकि ये सिद्धान्त किसी एक देश के नहीं हैं, न किसी एक विशेष काल या किसी एक विशेप संस्कृति पर लागू हैं। भापिक संप्रेषण की प्रक्रिया में दो पक्ष हैं, सम्प्रेषक और ग्रहीता, इसके साथ ही निम्नलिखित पक्ष अभिप्राय और उद्दिष्ट प्रयोजन आदि को लेकर उपस्थित होते हैं—

1. सम्प्रेषक या वक्ता किस अभिप्राय से और किस उद्दिष्ट प्रयोजन से सम्प्रेषण करता है, यह प्रयोजन सूचना है या संवेग की प्रतीति है या प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्तर है, इस पर विचार करना प्रथम पक्ष है।

2. सम्प्रेषण का विधायक वास्तविक और व्यक्त व्यापार, दूसरे शब्दों में प्रोक्ति (जिसको चेष्टा, इंगित, मुद्रा आदि से अधिक प्रभावी और सबल बनाया जाता है) द्वितीय पक्ष है।

3. सम्प्रेषण का सन्दर्भ तृतीय पक्ष है (सन्दर्भ के अन्तर्गत भाषिक सन्दर्भ अर्थात् पूर्ववर्ती कथन तो आता ही है, देश-काल, अवसर, सम्प्रेषक, वक्ता और ग्रहीता के सम्बन्ध आदि सभी बातें आ जाती हैं)।

4. ग्रहीता के ऊपर सम्प्रेपण का प्रभाव और प्रतिक्रिया (क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि जो सम्प्रेषक का अभिप्राय या उद्देश्य हो, वह ग्रहीता को प्राप्त हो ही जाय, उदाहरण के लिए हम जाड़े में बाहर से किसी मित्र के घर जायें और कहें बड़ी ठंड है और मित्र उत्तर दे कि हाँ बड़ी ठंड है, यह मेरा संकेत न पकड़े कि खिड़कियाँ खुली हैं, बन्द कर दें, वह मेरा अभिप्राय सूचना मात्र माने या उद्देश्य सूचना का समर्थन) चौथा पक्ष है।

5. सम्प्रेपण का सामाजिक परिणाम (अर्थात् प्रत्येक भापिक सम्प्रेपण के पीछे एक लोक प्रसिद्धि (कन्वेंशन) का बल होता है हम यह कहेंगे तो यही समझा

जायेगा। इस लोक प्रसिद्धि या रूढ़ि या सामाजिक मान्यता का कितना अनुपालन हुआ है,) पाँचवाँ पक्ष है।)

हम और ब्यौरे में जब जाते हैं तो और भी सूक्ष्म स्तर उभरते हैं। प्रत्येक भाषा-व्यवहार में कुछ साभिप्राय होता है, कुछ अनभिप्राय। उदाहरण के लिए किसी के सन्तान नहीं हुई और उससे मिलने बरसों बाद पहुँचे और पूछ बैठे—बाल-बच्चे मजे में हैं तो वह उदास हो गया। हमारा अभिप्राय यह नहीं था कि बाल-बच्चों के के अभाव की स्मृति जगायें, हम तो मान बैठे थे कि सहज जैव-क्रम में बच्चे हुए होंगे। हमारी बात से जो दुःख पहुँचा, वह अनचाहे या अनभिप्राय था। इसके साथ ही वक्ता-ग्रहीता की सम्प्रेषण-प्रक्रिया की साझेदारी की मात्रा भी विचारणीय होती है। मैथिल साहित्यकार हरिमोहन झा के एक पात्र मौजीलाल झा साहित्यिक मैथिली नहीं जानते, महीने में दस दिन कचहरी में ही जमीन जायदाद के मुकदमों के पीछे रहते हैं, पत्नी सरस्वती विद्यापति पदावली में डूबी हुई है, सरस पत्र लिखती है और झा जी कचहरी की भाषा में उत्तर देते हैं कि मोहतरमा सरसुत्ती देवी को वाजेह हो कि हम यहाँ कचहरी के काम में मशगूल हैं, मुकदमों में तारीख पर तारीख पड़ती जा रही है. हमें मुबलिग पाँच सौ रु० जिसका निस्फ मुबलिग दो सौ पचास होते हैं सख्त जरूरत है, एक नग गहना बन्धक रख कर फौरन भेज दो। ज़ाहिर है इस उत्तर में पदावली में रची पत्नी पर पानी पड़ गया। वक्ता-ग्रहीता के सम्बन्ध की चर्चा पहले व्याख्यान में कुछ हो चुकी हैं, और विशेष रूप से विनेता-विनेय सम्बन्ध के महत्व की।

एलवुड ने भाषा-व्यवहारशास्त्र (प्राग्मैटिक्स) से कुछ अपेक्षायें की हैं, वे अपेक्षायें वस्तुतः भाषा सम्प्रेषण-व्याकरण की ही अपेक्षायें हैं। अपनी पुस्तक Linguistic Communication As Action And Cooperation–A Study In Pragmatics में उन्होंने ये साक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किये हैं। "भाषा व्यवहारशास्त्र उन घटकों का अध्ययन प्रस्तुत करता है, जो यह निर्धारित करते हैं कि कौन सूचना प्रेषक द्वारा वास्तविक रूप में सम्प्रेषित होती है और ग्रहीता द्वारा गृहीत होती है, कौन सम्प्रेषण के पीछे कौन से अभिप्राय उद्देश्य और अभिप्रेषण तथा हेतु हैं, किन विभिन्न प्रकारों से ग्रहीता प्राप्त सूचना की प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, प्रेषक के अभिप्राय और ग्रहीता की प्रतिक्रिया में कौन सा सम्बन्ध है और दूसरे कौन से सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक घटक (उदाहरण के लिए संवेगों और मनोवृत्तियों की व्यवस्था अथवा, सामाजिक भूमिकाओं का महत्व, शक्ति और एकजुटता आदि सामाजिक रचना के घटक) सम्प्रेषण में सक्रिय हैं। इसके अतिरिक्त इस अध्ययन की परिधि में रूढ़िगत कथ्य और अभिप्रेय कथ्य के बीच सम्बन्ध या अभिप्रेत और ग्रहीत कथ्य के बीच

सम्बन्ध भी आता है। इस शास्त्र से अपेक्षा की जाती है कि यह भी निश्चित करे कि यह सम्बन्ध किस सीमा तक विभिन्न सन्दर्भगत घटकों पर निर्भर है।"[1]

भाषा-व्यवहार के इन पक्षों पर प्राचीन भारतीय विचारकों का ध्यान बहुत पहले गया क्योंकि वाक् भारतीय परम्परा का उपलक्षण है, भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में अति संक्षेप में भाषा-व्यवहार के त्रिकोण की चर्चा की है भाषा के प्रयोग करने वाले का ज्ञान (Language user's Knowledge) बाह्य अर्थ (external meaning) भाषा का प्रयोग (language use) इन तीनों का सम्बन्ध उच्चरित शब्दों से स्थापित होता है। इसकी व्याख्या विस्तार में आगे करूँगा, पर पहले भाषा-व्यवहार की परिभाषा क्या हो सकती है, इस पर भारतीय चिन्तकों के साथ बैठकर विचार-विमर्श करें।

महाभाष्य पर टीका करते हुए उद्योतकार नागेश भट्ट ने भाषा शब्द का लक्षण ही किया कि प्रयोज्य-प्रयोजक, वृद्ध व्यवहारः भाषा अर्थात् भाषा वह व्यवहार है जो दो वयस्क व्यक्तियों के बीच होता है, उनमें एक प्रयोजक होता है दूसरा प्रयोज्य। वाक्यपदीयकार ने भी भाषा को प्रयोज्य-प्रयोजक व्यवहार या प्रयोग ही माना है, और प्रयोग को ही अर्थ का नियामक माना है। दूसरे शब्दों में जिस रूप में भाषा का, अर्थ का सम्प्रेषण होता है, वही रूप, वही अर्थ है। और अनविच्छिन्न रूप से चलने वाले भाषा व्यवहार व्यवस्थित मार्ग बन जाते हैं, उनमें सम्प्रेषण की निश्चितता होने से किसी दूसरे प्रकार की तार्किक संगति की अपेक्षा नहीं रहती। (वाक्यपदीयम् I/30-31)

न चायमादृते धर्मस्तर्केण व्यवतिष्ठते।
ऋषीणामपि यज्ज्ञानं तदप्यागमपूर्वकम् ॥30॥
धर्मस्य चाव्यवच्छिन्नाः पन्थानो ये व्यवस्थिताः।
न तांल्लोकप्रसिद्धत्वात् कश्चित् तर्केण बाधते ॥31॥

---

1. **Pragmatics**:–Pragmatics could be viewed as the study of the factors which determine what information is actually communicated by a sender and apprehended by a receiver; the different communicative intentions, purposes, motives and reasons; the different ways in which a receiver can react to information; the relationship between sender intention, receiver reaction and other psychological and sociological phenomena, such as systems of emotions and attitudes (including cognitive ones) and phenomena like social structure, role relations, power and solidarity. Further, it should study the relationship between conventional content and the intended content of a sender or the apprehended content of a receiver. It should determine to what extent this relationship is dependent on various contextual factors such as shared background assumptions.

(Jans Allwood, Linguistic Communication as Action and Cooperation : A Study in Pragmatics, P. 235).

अनविच्छिन्न प्रयोग के प्रवाह को ही आगम कहा गया है और धर्म अर्थात् सामाजिक व्यवहार आगम की परम्परा प्राप्त सामाजिक स्वीकृति पर निर्भर है, तर्क पर नहीं। इसका अर्थ यह नहीं है कि तर्क का स्थान भाषा-व्यवहार में नहीं है। भाषा-व्यवहार में सम्प्रेषण को प्रभावकारी बनाने के लिए तर्क की आवश्यकता है। किन्तु सम्प्रेषण की कुछ ऐसी लाचारियाँ भी होती हैं जिनमें भाषा-व्यवहार की परिधि में रहने वाली उन परिस्थितियों का दबाव पड़ता है और उसके कारण भाषा-व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इस परिवर्तन की प्रक्रिया में तर्कसंगति नहीं रह जाती है। प्राचीन भाषा विचारक यह भी पहचानते थे कि भाषा-व्यवहार प्रयोक्ता के ज्ञान, वाह्य-अर्थ और शब्द का स्वरूप इन तीनों के परस्पर सम्बन्ध पर ही आधृत है। (वाक्यपदीय 3/3/1)

ज्ञानं प्रयोक्तुर्वाह्योऽर्थः स्वरूपं च प्रतीयते।
शब्दैरुच्चरितैस्तेषां सम्बन्धः समवस्थितः ॥1॥

अर्थात् बोलने वाले और सुनने वाले—दोनों का ज्ञान कि इस शब्द से यह अर्थ उद्बोधित होता है, भाषिक अर्थ का सन्दर्भ वाह्य अर्थ और शब्द अर्थात् भाषिक संकेत के प्रयोग के अभ्यास से प्राप्त संकेत और संकेतित का ज्ञान, संकेतित अर्थ के सन्दर्भ (Content of denotative meaning) और संकेतक शब्द (denotating word) इन तीनों में सामंजस्य रहने पर ही सम्प्रेषण पूरा होता है, अन्यथा वक्ता कुछ कहना चाहता है और यदि प्रवक्ता के शब्दार्थ प्रत्यय और प्रतियत्ता अर्थात् ग्रहण करने वालों के शब्दार्थ प्रत्यय में सामंजस्य नहीं है तो अर्थ-ग्रहण में अन्तर होगा ही।[1] इसी कारण सम्प्रेषण का पूर्ण होना एक आदर्श स्थिति है।

वक्ता न्यवोव प्रक्रान्तो भिन्नेषु प्रतिपत्तृषु ॥
स्वप्रत्ययानुकारेण शब्दार्थः प्रविभज्यते ॥

सम्प्रेषण के इस संकेत को पहचानते हुए ही वाक्यपदीयकार ने यह कहा कि केवल अकेले एक वाक्य से सम्प्रेषण की पूर्णता नहीं होती, प्रकरण अर्थ, अर्थात् वक्ता का अभिप्राय और औचित्य, देश और काल, ये सभी अर्थग्रहण में अपेक्षित होते हैं।[2]

वाक्यात् प्रकरणादर्थादौचित्यादेशकालतः।
शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात् ॥314॥
संसर्गो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः ॥315॥

---

(1) वाक्यपदीय 2/135
(2) वही 2/314-316

सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः ।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः ॥316॥

प्रायः यह समझा जाता है कि संस्कृत व्याकरण पद-शास्त्र है, पर वाक्यपदीयकार का जो मन्तव्य अभी ऊपर दिया है, वह स्पष्ट प्रमाणित करता है कि व्याकरण न केवल पद का विश्लेषण है, न केवल वाक्य का अपितु यह पूरे वाचिक सन्दर्भ (Speech Context) का विश्लेषण है। इसलिए इसमें वाक्य के अलावा वाक्य के वाचिक सन्दर्भ को, और उस सन्दर्भ से ज्ञात वक्ता के अभिप्राय को समाज से स्वीकृत भाषिक-व्यवहार के औचित्य को तथा वाचिक-व्यवहार के देश और काल को जानना अत्यधिक आवश्यक है, विना इनकी सहायता लिए असंदिग्ध रूप में इस भाषिक व्यवहार का यही अर्थ है, निश्चित नहीं किया जा सकता। वक्ता के अभिप्राय या वक्ता की विवक्षा की भाषिक प्रवृत्ति सबसे अधिक संहिता या समास में होती है। संहिता का नियमन करते हुए आचार्यों ने कहा कि पद के भीतर और छन्द के अर्द्धभाषा के भीतर तो संहिता नित्य होती है—"संहितैकपदे नित्याभनित्यापद्य समासयोः।" किन्तु वाक्य में संहिता वक्ता की विवक्षा के अधीन रहती है। जब वक्ता किसी पद पर जोर देता तो उसके बाद एक विवृति अर्थात् (hiatus) रखता है, जिससे कि यह सम्प्रेषित हो कि जिसके बाद विवृति है, वह एक प्रकार से अन्य की अपेक्षा अधिक विधेय (predicable) है जैसे—यदि "एहि एहि" में संधि नहीं होती तो इसका अर्थ होता है कि कोई व्यक्ति बुलाने पर नहीं आ रहा है उससे मनुहार की जा रही है कि आओ। किन्तु यदि एहियेहि ऐसा किया जाएगा तो स्पष्ट होगा कि आने पर बल नहीं है, बुलाने पर बल है, क्योंकि किसी विशेष उद्देश्य से बुलाया जा रहा है।

सम्प्रेषण की इस परिधि में रहने वाली परिस्थितियों का सूत्र रूप में कुछ आकलन पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिलता है, कुछ मीमांसा शास्त्र में, कुछ पूर्व मीमांसा के सूत्रों में तथा न्याय शास्त्र के सूत्रों में और कुछ साहित्यशास्त्रों में। थोड़े से संकेत विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी मिलते हैं, जिससे तृतीय खंड के पंचम और षष्ठ अध्याय में विभिन्न प्रकार के भाषिक-व्यवहारों के नाम और उनकी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर में आर्यवचन, ऋषिपुत्रवचन, देववचन, राजर्षिवचन, दानववचन, गन्धर्व वचन, राक्षस वचन, यक्ष वचन, नाग वचन, पुरुष वचन ये सभी कोटियाँ दी गयी हैं. और इनके द्वारा भाषा-व्यवहार की विशेषता के कई स्तर बतलाए गए हैं, जैसे—पुरुष वचन या मानुष वचन की विशेषता है कि वह राग द्वेष से मुक्त होता है, पर युक्तिपूर्ण होता है। नाग वचन अत्यन्त स्पष्ट होता है और उसमें पुनरुक्तियाँ होती हैं। राक्षस वचन दुर्बोध और भीषण होता है। गन्धर्व वचन अल्पाक्षर और अल्पार्थक होता है। दानव वचन बहुत शब्दों में अल्प अर्थ कहने वाला होता है

देववचन बहुत शब्दों में बहु अर्थ देने वाला होता है। आर्य वचन आज्ञा रूप होता है और हेतु रहित होता है। ऋषि का वचन निपात बहुल और बड़े वाक्यों वाला होता है।

विष्णुधर्मोत्तरे प्रोक्तं मार्कण्डेयेन धीमता। वज्रं प्रति यथा सर्व प्रोच्यतेऽर्थसमा अणुं।
तत्राज्ञायुक्तमद्वैधं दीप्तं गम्भीरशब्दवत्। क्वचिन्निरुक्तसंयुक्तं वाक्यमेतत्स्वयंभुवः ॥1॥
यत्किंचिन्मिश्रसंयुक्तंयुक्तं नामविभक्तिभिः। प्रत्यक्षाभिहितं यच्च तद्ऋषीणां
वचः स्मृतः ॥2॥
नैगमैर्विविधैः शब्दैर्निपातबहुलं च यत्। न चापि सुमहद्वाक्यं ऋषिकाणां
वचः स्मृतम् ॥3॥
अविमृष्टपदं ज्ञेयमृषिपुत्रवचो नृप। भूतभव्यंभवज्ञानं जन्मदुःखविकुत्सनम् ॥4॥
मित्राणां तद् भवेद्वाक्यं गर्भेष्वार्षप्रवर्तनम्। आज्ञायुक्तवचनं तथा हेतुविवर्जितम् ॥5॥
राजर्षीणां तु विज्ञेयं बह्वर्थबहुविस्तरम्। बह्वभिधानं बह्वर्थं देवतानां प्रकीर्तितम् ॥6॥
बह्वभिधानमल्पार्थं दानवानां प्रकीर्तितम्। अल्पाभिधानमल्पार्थं गन्धर्वाणां
तथा भवेत् ॥7॥
दुर्बोधं विषमं चैव राक्षसानां प्रकीर्तितम। गूढ़ाक्षरं तु यक्षाणां किन्नरैरुक्तवत्तथा ॥8॥
नागानामतिविस्पष्टं पुनरुक्तसमन्वितम्। रागद्वेषसमायुक्तं हेतुमत्पौरुषं भवेत् ॥9॥

समानान्तर रूप में आधुनिक सन्दर्भ में हम इस प्रकार वचनों की व्यवस्था स्वीकार करते हैं, औपचारिक बनाम अनौपचारिक, आदृत बनाम अतिपरिचित (Formal/Unformal/Respiet/Familiar। औपचारिक आदृत और औपचारिक अतिपरिचित वचन तथा अनौपचारिक आदृत और अनौपचारिक अतिपरिचित वचन भी हो सकते हैं। विभिन्न संस्कृतियों में इनके सूक्ष्मतर स्तर भी सम्भव हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण की पूर्वोक्त कोटियाँ आलंकारिक भाषा में विभिन्न प्रकार की वाचिक स्थितियों का ही निरूपण करती हैं। अगले व्याख्यान में हिन्दी से उदाहरण देकर यह बात विस्तार में समझायी जायेगी।

ऋषिवचन प्रत्यक्ष अनुभव की वाणी होता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में ही विभिन्न प्रकार की पारिभाषिक वचन कोटियों का भी निर्धारण हुआ है। जैसे अधिकरण, योग, हेत्वर्थ, उद्देश्य, निर्देश, उपदेश, अपदेश, व्यपदेश, अतिदेश, अपवर्ग, वाक्यशेष, सार्थापत्ति, प्रसंग, एकान्त, अनेकान्त, पूर्वपक्ष, निर्णय विधान, विपर्यय, अतिक्रान्त, अनागत-वीक्षण, संशय, व्याख्यान, अनुमत, स्वसंज्ञा, निर्वचन, दृष्टांत, नियोग, विकल्प, समुच्चय, ऊह्य।

अधिकरणं योग: पदार्थो हेत्वर्थ उद्देश्यो निर्देश उपदेशोपदेश: प्रदेशोतिदेशोरपवर्गो वाक्यशेषोर्थापित्ति: प्रसंग: एकान्तो नेकान्त: पूर्वपक्षो निर्णयो विधानं विपर्ययो तिक्रान्तवीक्षणमनागतवीक्षणं संशयो व्याख्यानमनुमतं स्वसंज्ञा निर्वचनं दृष्टान्तो नियोगो विकल्प: समुच्चय ऊह्यमिति । तत्र यमर्थमधिकृत्योच्यते तदाधिकरणम् । येन वाक्यार्थो युज्यते स योग: । योर्थो विकृतसूत्रपदे स पदार्थ: । यदन्यतो युक्तिमदर्थस्य साधनं च हेत्वर्थ:। समासवचनमुद्देश: । विस्तरवचनं निर्देश: । एवभेवेत्युपदेश: अनेन कारणेनेत्यपदेश: । प्रकृतस्यानागतेन साधनं प्रदेश:। अतिक्रान्तेवातिदेश: । अभिप्रायानुकर्षणमपवर्ग: । येनार्थ; परिसमाप्यते पदेनाहार्येण स वाक्यशेष: । यदकीर्तितमर्थादापाद्यते सार्थापत्ति: । प्रकरणोभिहितोर्थ:केनचिदुपोद्घातेन पुनरुच्यमान: प्रसंग: । सर्वत्र यस्तथा स एकान्त: । क्वचिदन्यथा सो नेकान्त: । प्रतिमेघवचनं पूर्वपक्ष: । तस्योत्तरवचनं निर्णय: प्रकरणानुपूर्व्यं विधानम् ।। तस्य प्रातिलोम्यं विपर्यय: । इत्युक्तमिव्यतिक्रान्तवीक्षणम् । परत्र वक्ष्यामीत्यनागतवीक्षणम् । उभयतो हेतुदर्शनं संशय: । तत्रातिशयवर्णना व्याख्यानम् । परमतमप्रतिषिद्धमनुमतम् । परैरसंमत: शब्द: स्वसंज्ञा लोके प्रतीतमुदाहरणं निर्वचनं । तद्युक्तिनिदर्शनं दृष्टान्त: । इदमेवेति नियोग: । इदंवेदं वेति विकल्प: । इदं वेदं वेति समुच्चय: । यदनिर्दिष्टंयुक्तिगम्यं तदूह्यम् । इति ।

विष्णुधर्मोत्तर की इन परिभाषाओं से एक बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है कि भारतीय चिन्तन वाग्-व्यवहार के प्रति न केवल बहुत जागरूक है, बल्कि उस व्यवहार को शास्त्रीय कोटियों में वर्गीकरण का मार्ग भी निर्धारित किया और उसका प्रभाव साधारण जन के भाषा-व्यवहार पर भी पड़ा, जो इसका अभ्यस्त हो गया कि सम्यक् भाषा-व्यवहार अपने आप में एक सामाजिक मूल्य है । पतंजलि ने व्याकरण के प्रयोजनों में कुछ ऐसे प्रयोजनों की चर्चा की है, जो इस मूल्यबोध का स्पष्ट प्रमाण देते हैं। पाँच मुख्य प्रयोजनों में अंतिम और चरम प्रयोजन है असंदेह । व्याकरण यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी उक्ति के अर्थ-ग्रहण में संदेह का अवसर न रहे । स्पष्ट है कि भाषा की सुनृत वाणी सामाजिक व्यवहार के लिए सबसे अधिक उपयोगी मानी गयी है । इस प्रयोजन को गिनाने से एक बात और उद्भूत होती है कि व्याकरण को सम्प्रेषण की परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना है । तभी जैसा कि हम पहले कह आए हैं, अर्थग्रहण में परिच्छिन्नता लाई जा सकेगी । गौण प्रयोजनों में पतंजलि ने कई ऐसे प्रयोजन गिनाए जिननें यह इंगित किया कि सम्यक् भाषा-व्यवहार से ही ऐहिक और आमुष्मिक अभ्युदय की प्राप्ति होती है और सम्यक् व्यवहार करने वाला व्यक्ति, या भाषा-कुशल व्यक्ति ही वाग्योगी होता है । साथ ही उचित अभिवादन और प्रत्यभिवादन का प्रकार न जानने से व्यक्ति समाज में निंदित होता है वक्ता और ग्रहीता के सम्बन्ध का ध्यान रखे बिना जो भाषा-व्यवहार हो,वह निन्दित होगा । अत: व्याकरण को यह यत्न करना चाहिए कि सम्यक् भाषा-

INSTITUT OF ADVANCED ... Acc. No. 95179

व्यवहार के संकेतों का निर्देश करे। वैयाकरण को यह सुनिश्चित करना है कि भाषा-व्यवहार के माध्यम से—"यत्रा सखाय: सख्यानि जानते।" लोक सख्यभाव की पहचान कर सके अर्थात लोक-समाज में सम्प्रेषण की कुशलता के द्वारा समंजस और समरस हो सके। सम्प्रेषण व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव किए बिना प्रयोजनों की यह चर्चा सम्भव ही नहीं थी।

पाणिनि ने अपनी सूत्रात्मक अष्टाध्यायी में सम्प्रेषण व्याकरण के कुछ तत्व जगह-जगह निर्दिष्ट किए हैं। ये निर्देश तीन प्रकार के हैं। उन्होंने वाक्य-सन्धि प्रकरण में वाक्य समाप्ति के संकेत अनुतान, स्वर और मात्रा में पहचानने की कोशिश की है। पाणिनि अष्टाध्यायी के आठवें अध्याय के दूसरे पाद के 82-108 के सूत्र वाक्य के सीमांत की प्रतीति स्वराघात और मात्रा में देखने की कोशिश करते हैं, तथा इसी अध्याय के चौथे पाद के सूत्र वाक्य के सन्दर्भ की अभिव्यक्ति वर्णस्तर पर देखने की कोशिश करते हैं। वैयाकरणों ने ही नहीं, मीमांसकों ने भी, अर्थैकत्व को वाक्य-प्रयोजक माना है। अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकांक्षं चेत् विभागे स्यात्। -मी० सू० 2/1/46। आख्यातं साव्ययकारक विशेषं वाक्यम्। 1/2/1/1 वार्तिक।

पतंजलि ने अष्टाध्यायी के 1/1/31 के पाँचवें वार्तिक पर चर्चा करते समय लोक-विज्ञान का अर्थ समझाते हुए एक बहस छेड़ी है, जिसमें उन्होंने ग्राम शब्द के अर्थों का स्मरण करते हुए "एकशालो ग्राम:" वाक्य में इह लौकिक अनुभव के आधार पर अध्याहरण किया है कि एक घर वाला गाँव वही होगा जो जंगल की सीमा पर हो और जिसमें एक ऊँचा-सा टीला हो, वह घर दूर से दिखता हो—(276)

"तद्यथा-लोके "शाला समुदायो ग्राम:" इत्युच्यते।
भवति चैतदेकस्मिन्नपि "एकशालो ग्राम:" इति ॥
विषम उपन्यास:। ग्रामशब्दो यं बह्वर्थ:।
अस्त्येव शालासमुदाये वर्तते। तद्यथा—"ग्रामोदग्ध: इति ॥
अस्ति वाटपरिक्षेपे वर्तते। तद्यथा—"ग्रामं प्रविष्ट:" इति।
अस्ति मनुष्येषु वर्तते "ग्रामो गतो ग्राम आगत:" ॥
अस्ति सारण्यके ससीमके मस्थाण्डिलके वर्तते।
तद्यथा—"ग्रामो लब्ध:" इति।
तद्य: सारण्यके ससीमके सस्थाण्डिलके वर्तते।
तमभिसमीक्ष्यै-स्तत्प्रयुज्यते-"एकशालो ग्राम: "इति।"

इस चर्चा से अर्थग्रहण की पद्धति पर प्रकाश पड़ता है और विभिन्न-विभिन्न प्रयोगों में ग्राम शब्द के अर्थों पर कैसे प्रभाव पड़ता है।

गाँव जल गया, इसमें गाँव का अर्थ घरों का समुदाय है ।

गाँव में प्रविष्ट हुआ, इसमें गाँव का अर्थ—बाग बगीचों से घिरा हुआ, जिसमें प्रवेश के कुछ निश्चित द्वार हैं ।

"गाँव चला गया, गाँव लौट आया" इन वाक्यों में गाँव निवासियों का बोधक है ।

"गाँव मिल गया" इसमें विजन प्रदेश के सीमान्त पर स्थित गाँव से तात्पर्य है ।

एक घर का गाँव है । इसमें विजन में ऊँचाई पर स्थित एक मकान तक सीमित ग्राम से तात्पर्य है ।

वाक्यं तदपि मन्यन्ते यत् पदम् चरितक्रियम् (वा० प० 2/326)

साकांक्षावयवं भेदे परानाकांक्षशब्दकम् ।

क्रियाप्रधानमेकार्थं सगुणं वाक्यमुच्यते ।।

कारकाद्यन्वित क्रियाप्राधाम्यैकविशेष्यकबोधसाध्यसाधनपदकदम्बकं वाक्यम् ।

—शब्दार्थरत्न, तारानाथ पृ० 29 ।

पर पाणिनि ने भी वाक्य को मात्र वाक्यविवेचन तक सीमित नहीं रखा । वाक्य के पूर्ववर्ती वाक्य या उत्तरवर्ती वाक्य को ध्यान में रखते हुए वाक्य-कोटियों का निर्देश किया । उदाहरण के लिए सम्प्रश्न प्रश्न से अलग है क्योंकि सम्प्रश्न में प्रश्न के द्वारा पुष्टि चाही जाती है (3.3-161-62) प्रश्न के द्वारा विवरण या हाँ/नहीं में अन्तर चाहा जाता है । (3/2/120.121) इसी प्रकार पृष्टप्रतिवचन वह वाक्य है जिसमें स्पष्ट रूप से द्योतित होता है कि यह वाक्य किसी प्रश्न का उत्तर है, इसलिए इसमें प्रश्न वाक्य का अध्याहार आवश्यक है (8/2/83) । प्रत्यभिवाद वह वाक्य है, जहाँ अभिवादन का उत्तर दिया जाता है । सन्मति वह वाक्य है जहाँ किसी पहले कही गई बात का सकारना द्योतित होता है । आख्यान में कोई सिलसिलेवार घटना-क्रम बताया जाता है, अर्थात् उसमें पूर्व की घटना और आगे की घटना सन्दर्भित है । अभ्यादान वह वाक्य है जहाँ यह द्योतित है कि चर्चा आरम्भ की जा रही है । खुली छूट के लिए अनुमति माँगना अतिसर्ग है (3/3/163) । अनुवेषणा वह वाक्य है, जहाँ पर श्रोता (8/1/43) से यह अपेक्षा की जा रही है कि वह अनुमति देगा । अभिज्ञा-वचन में पूर्व बात का स्मरण कराया जाता है (3/2/112) । ये सभी निर्देश यह इंगित करते हैं कि वाक्यार्थ ग्रहण में अकेले वाक्य से काम नहीं चलता, उसके पूर्वापर वाचिक सन्दर्भों का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है क्योंकि कोई भी भाषिक सम्प्रेषण हवा में नहीं होता, वह एक सामाजिक समाज-भाषिक सन्दर्भ में होता है, जिसमें निम्न बातों का महत्व है—

1. वक्ता और श्रोता के बीच में किस प्रकार का सम्बन्ध है, ज्येष्ठ-कनिष्ठ का, मित्र-मित्र का, उच्चावच का, सम का, नेतृ नेय का दूसरे शब्दों में बोलने वाले में कितनी शक्ति है कि वह उसकी बात का प्रभाव श्रोता पर पड़े और उसका सम्प्रेषण सार्थक होगा। वह शक्ति केवल प्रभुता की ही नहीं होती है, प्रेम की भी होती है, इसलिए प्रार्थना और अधीष्ट में अन्तर है। प्रार्थना अनुरोध है जिसमें एक स्नेह के अधिकार की मात्रा है। अधीष्ट केवल आदरपूर्वक वचन है और पूजा वाक्य विशेष-सम्मान अर्थात् अधीष्ट से पूजा का दर्जा अधिक ऊँचा है। अधीष्ट बराबर के स्तर के व्यक्ति के लिए भी प्रयुक्त होता है, जबकि पूजा पूज्य के प्रति।

2. वक्ता के अभिप्राय और वक्ता के संवेग से सम्बद्ध भी कोटियाँ हैं। जैसे— विधि, इच्छा, आशंसा, अमर्ष, आमंत्रण-निमंत्रण, चित्रीकरण, प्रहास, आशिष, कुत्सा, क्रोध, कामप्रवेदन, आज्ञा, प्रेष, असूया, गर्हा-भावगर्हा, क्षिया (उपेक्षा), भर्त्सन, और यह उल्लेखनीय है कि भर्त्सन के साथ क्रोध होगा और कुत्सा के साथ असूया का होना आवश्यक है (8/2/103 अष्टाध्यायी)।

3. भाषिक-व्यवहार की परिस्थिति क्या है? परीप्सा (हड़बड़ी) प्राप्तकाल, (अनुकूल अवसर की प्राप्ति), अनवक्लृप्ति (असंभव-स्थिति), दूराह्वान, प्रतिश्रवण, विचार्यमाण, अनुकरण (3/4/52-53, 3/3/163, 3/3/145, 8/2/84, 8/2/99, 8/2/98)

इनके अलावा भी कुछ संकेत बिखरे हुए मिलते हैं जिनमें आनुष्ठानिक व्यवहार की भाषा में विशेष-विशेष अनुष्ठान के लिए विशेष-विशेष प्रकार की स्वर व्यवस्था कराई गई है, तथा प्रयोग-विविधता दिखलाई गई है, तथा ऐसे भी स्थल हैं, जहाँ देशाचार के रूप में भाषा-भेद का संकेत किया है। विशेष रूप से पूर्व और उत्तर के लोगों के व्यवहार के निर्देश प्राच्याम् और उदीचाम् में मिलते हैं। अष्टाध्यायी में प्रतिवक्ता या श्रोता के भी निर्देश इसं प्रति प्रश्नः जैसे निर्देशों के द्वारा मिलते हैं। उसी प्रकार वक्ता के प्रकार के भी निर्देश मिलते हैं।

इन सूत्रों के आधार पर सम्प्रेषण व्याकरण के उपयोग के लिए हम पाणिनि की कोटियों को चार प्रकारों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

(1) वक्ता के वाचिक अभिप्राय से सम्बद्ध ये हैं और इनके प्रत्यायक संस्कृत भाषा में निश्चित हैं।

1. प्रश्न —प्रश्न वाक्य मात्र अनुतान स्वर और मात्रा से सूचित होता है। (8-2-100)

(क) सत्यं के साथ प्रश्न— समापिका क्रिया अनुदात्त (8/1/32)

(ख) किं के साथ प्रश्न— समापिका क्रिया अनुदात्त परन्तु निषेध में क्रिया अनुदात्त नहीं 8/1/44-45

	(ग) प्रत्यारम्भ (हाँ में जवाब कर चलने वाला प्रश्न)	समापिका क्रिया अनुदात्त 8/1/31
2.	सम्प्रश्न (प्रश्न के द्वारा पुष्टि की अपेक्षा रखने वाला प्रश्न)	क्रिया लिङ् या लोट् और अनुदात्त स्वर प्रत्यारम्भ की तरह 3/3/161-162
3.	इच्छा (सामान्य)—	सन् का विकल्प रूप से प्रयोग।
4.	कामप्रवेदन (अपने अभिप्राय की अभिव्यक्ति, इसमें इच्छा अभिव्यक्ति तक सीमित है)	लिङ् का उपयोग 3-3-153
5.	निमन्त्रण—(किसी विशेष कार्य के लिए अनुरोधपूर्वक बुलाना)	3/3/161-162 लोट्/लिङ् का प्रयोग
6.	आमन्त्रण (जो चाहो करो, इसकी छूट देना)	3/3/161-162 लोट्/लिङ् का प्रयोग
7.	अनुज्ञैषणा (अनुमति माँगना)	
7.	(क) अतिसर्ग (खुली छूट के लिए अनुमति माँगना)	
8.	प्रार्थना (अनुरोध)	
9.	आशंसा (किसी कार्य की सराहना)	
10.	प्रशंसा (किसी व्यक्ति की स्तुति)	
11.	प्रतिश्रवण (प्रतिज्ञा)	वाक्य का अन्त्य स्वर उदात्त और प्लुत हो। 8/2/99
12.	प्रहास (उपहास)	पुरुष विपर्यय से द्योतित 1/4/116
13.	आशिष् (मंगल कामना)	आशीर्लिङ का प्रयोग 3/4/116
14.	विधि (कार्य का ऐसा विधान जिसमें करणीयता अपरिहार्य न हो)	3/3/161-62
15.	असम्भव स्थिति की सूचना देना	लिङ्/लङ् के द्वारा द्योतन तथा जातु, यदि यच्च और यंत्र के साथ लिङ् द्वारा द्योतन 3/3/145-148
15.	(अ) सम्भावना	लिङ् द्वारा द्योतन यदि वाक्यारम्भ हो— 3/3/154
16.	क्रिया प्रबन्ध (क्रिया का सातत्य)	लुङ् और लुट् द्वारा द्योतन 3/2/135
17.	क्रियातिपत्ति (जहाँ किसी दूसरी क्रिया के प्रतिबन्ध से मूल क्रिया जुड़ी हो)	

उपभेद (क) वह स्थिति जहाँ कार्य कारण सम्बन्ध द्योतित करना हो, हेतुहेतुमत्।

(ख) वह स्थिति जहाँ इसके साथ ही भूतकाल का बोध कराना गम्य हो।

18 क्रिया समभिहार (जहाँ क्रिया का पौनः पुन्य द्योतित हो)
लङ् द्वारा द्योतित 3/1/22

19. प्राप्त काल (जहाँ अनुकूल अवसर की प्राप्ति द्योतित हो)
लोट् और कृत्य द्वारा द्योतन 3/3/163

(2) सम्प्रेषण और ग्रहीता के सम्बन्ध को ज्ञापित करने वाली कोटियाँ ये हैं—

1. अधीष्ट (यहाँ वक्ता ग्रहीता के प्रति विनम्र होकर बात करता है)
2. आज्ञा (जहाँ ग्रहीता विनेय है) (वक्ता के अभिप्राय की दृष्टि से आज्ञा के दो भेद हैं, प्रैष=सामान्य आदेश और विनियोग=कई उद्देश्यों से विशेष आदेश)

इन सम्बन्धों के प्रत्यायक पुरुष; वचन और वाच्य होते हैं।

(3) सम्प्रेषण के संवेग को द्योतित करने वाली कोटियाँ ये हैं—

1. क्षिया (सामान्य उपेक्षा)
2. कुत्सा (जहाँ किसी के प्रति आक्षेप गम्य हो)
3. असूया (जहाँ किसी के उत्कर्ष के प्रति ईर्ष्या हो)
4. कोप (क्रोध)
5. अमर्ष (किसी अपने व्यक्ति के कार्य से दुःख की अभिव्यक्ति हो)
6. चित्रीकरण (आश्चर्य)
7. गर्हा (अनादर)
8. भर्त्सना (आमने सामने फटकार)
9. पूजा (अतिशय सम्मान का भाव) समापिका क्रिया अनुदात्त न हो।
8/1/37-40

(4) वाचिक पूर्व सन्दर्भ और स्थिति से जुड़ी कोटियाँ (जो सम्प्रेषित हो रहा है, वह कब हो रहा है, किसके बाद हो रहा है, इससे सम्बद्ध कोटियाँ) ये हैं—

1. दूराह्वान (दूर से पुकारना) वाक्य का अन्त्य स्वर उदात्त तथा प्लुत।
2. अभिवादन
3. प्रत्यभिवादन
4. आरंभ (सिलसिलेवार बात कहने का उपक्रम)

5. सन्मति (पूर्व कही बात को सकारना)
6. पृष्टयुत वचन (पूर्व प्रश्न का उत्तर)
7. परीप्सा (हड़बड़ी में बात कहना),
   (यह संवेग की कोटि से संश्लिष्ट हो सकता है)
8. विचार्यमाण (पूर्वापर पक्ष प्रस्तुत करते हुए बात करना) थम्भ के आद्य शब्द का अन्त्य स्वर हो।
9. आमंन्त्रित (जहाँ कोई व्यक्ति नाम से या रिश्ते के वाचक शब्द से सम्बोधित हो)
10. अभ्यादान (बातचीत प्रारम्भ करना)

इन सभी कोटियों-उपकोटियों का संश्लिष्ट रूप ही अधिक मिलता है क्योंकि चारों स्थितियाँ भाषिक सम्प्रेषण में साथ चलती हैं, इसलिए अभिलक्षणों की पहचान संश्लिष्ट रूप में ढूंढ़नी पड़ती है। जहाँ पाणिनि की अष्टाध्यायी के ये संकेत एक सार्वभाषिक सम्प्रेषण व्याकरण के लिए पूर्वपीठिका प्रस्तुत करते हैं, वहीं न्याय और मीमांसा शास्त्रों के चिन्तन वक्ता के अभिप्राय ग्रहण की उपपत्तियाँ बहुत सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करते हैं। मीमांसा की पद्धति यद्यपि वैदिक वचनों के अर्थ ग्रहण के लिए मूलतः विकसित हुई, परन्तु उसका विस्तार सामान्य भाषा के अर्थ ग्रहण के क्षेत्र में भी किया जा सकता है। मीमांसकों ने **तात्पर्य** पर बहुत विशद विचार किया है, नैयायिक तो **तात्पर्य** को **वक्ता की इच्छा** मानते हैं, पर मीमांसक ग्रहीता की प्रतिपत्ति तक तात्पर्य का विस्तार मानते हैं। कुमारिल के अनुसार **समभिव्याहृति** (शब्दों का एक निश्चित क्रम में उच्चारण) के पीछे अभिप्रेरक शक्ति तात्पर्य है। नैयायिकों और मीमांसकों ने वक्ता के अभिप्रेरक स्वरूप पर भी विशद विचार किया है। प्रसिद्ध मीमांसक मंडन मिश्र ने **विधि विवेक** नामक ग्रन्थ में विधि या प्रवर्त्तना के तीन स्तर गिनाये हैं—आज्ञा, अध्येष्णा (प्रार्थना) और अभ्यनुज्ञा (अनुमति)।

प्राचीन भारतीय भाषाचिन्तन का समग्र आकलन अभी नहीं किया जा सका है, उसके एक-एक पक्ष पर अलग-अलग और प्रायः एकांगी दृष्टि से विचार तो बहुधः हुआ है, परन्तु आज आवश्यकता इस बात की है कि जिस समाज ने वाक् और वाचिक व्यवहार को इतना मूल्य दिया कि वाक् को सृष्टि के समकक्ष माना, उस समाज के दीर्घकालीन वाक्यपरक चिन्तन का समग्र रूप आकलित करके यह देखा जाय, इसमें कितना ऐसा कुछ है जो सार्वभौम महत्व का हो सकता है।

सम्प्रेषण व्याकरण

चॉम्स्की ने यह स्थापना की कि भाषा एक मनोवैज्ञानिक वास्तविकता है और व्याकरण का कार्य यह है कि वह वक्ता के भाषा-ज्ञान-व्यवस्थापन को समझते हुए विवरण प्रस्तुत करे। दूसरे शब्दों में चॉम्स्की और उनके अनुवर्तियों ने मनोवैज्ञानिक वास्तविकता का लक्ष्य किसी भी वैयाकरण के सामने रखा, पर भाषा-प्रयोग, भाषा-अधिगम, भाषा-त्रुटि, मनोभाषिक परीक्षण के जितने भी तथ्य संकलित किये गये हैं उनसे रूपान्तरण व्याकरण की क्षमता वाले प्रतिरूप (मॉडल) की उपयुक्तता का समर्थन नहीं मिलता है। भाषा-पण्डितों ने तीन प्रकार के सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। जैसा कि परलिनेल' (Perlinell) ने अपने एक निबन्ध में संकेत किया कि तीन प्रकार के विकल्प व्याकरण हो सकते हैं—

1. संरचनात्मक-क्षमता-व्याकरण (रूपान्तरण व्याकरण)।
2. भाषा-व्यवहार क्षमता-व्याकरण (जिसमें भाषा-प्रयोग-प्रक्रिया की आदर्श स्थितियों का निरूपण हो)।
3. वास्तविक भाषा-प्रयोग स्थितियों का निरूपण-व्याकरण (जिसमें जैसी-जैसी भाषा-घटना होती है उसका निरूपण प्रस्तुत हो)।

'फॉडर' आदि ने पहला विकल्प प्रस्तुत किया है। 'फ़ाडर' ने पहले विकल्प को अभिज्ञापक व्यवस्था के रूप में माना है और दूसरे और तीसरे विकल्पों को भाषिक-प्रयोग के हेतु व्यापार से सम्बद्ध माना है। 'इटकोनेन' जैसे विद्वानों ने स्वायत्त भाषा-विज्ञान को निर्वैयक्तिक, गुणात्मक और अहेतुक तथा स्थिति सापेक्ष्य भाषा विज्ञान को (जैसे मनोभाषिकी या समाजभाषिकी) व्यक्ति अनुभव सापेक्ष्य, परिमाणात्मक, सहेतुक और संभावना परक इस रूप में अलग बतलाया है। उन्होंने ऊपर दिये पहले और तीसरे विकल्प का अन्तर स्पष्ट किया है पर हमारा काम दोनों विकल्पों से चलता नहीं। सम्प्रेषण की दृष्टि से हमें इससे कोई सरोकार नहीं कि कोई वक्ता वास्तविक रूप में क्या करता है या उस वक्ता का उस वक्ता के भाषा व्यवहर्त्ता के पक्ष पर उसकी मानसिक स्थिति (तनाव, थकान, नशा, राग, द्वेष) का क्या प्रभाव पड़ता है। हमारा

सरोकार इससे है कि वक्ता अपनी भाषा से किस-किस प्रकार की करामात कर सकता है, अर्थात क्या-क्या वह सम्प्रेषित कर सकता है, अथवा इससे सरोकार है कि सामाजिक मानदण्डों के अनुसार उसे क्या करना चाहिए। इसलिए हमें आदर्श भाषा प्रयोग की स्थितियों का निरूपण करने वाला विकल्प ही स्वीकार हो सकता है, यदि हम संप्रेषण व्याकरण का कोई साँचा प्रस्तुत करना चाहते हैं। संप्रेषण व्याकरण के लिए दूसरा विकल्प इसलिए ग्राह्य है कि विभिन्न संप्रेषणयुक्त संप्रेषण-प्रयोजनों की सिद्धि के लिए उच्चारण, वाक्य-विन्यास और शब्द-चयन कैसे किया जाय, इसकी जानकारी आदर्श रूप में ही दी जा सकती है। वक्ता-श्रोता की क्षमता, अभिव्यक्ति की व्याकरण सम्मतता की पहचान की योग्यता नहीं, मुख्य रूप से वह संप्रेषण की योग्यता हुई कि नहीं, यह पहचानने की है। संप्रेषण व्याकरण का विवेच्य विषय इस प्रकार सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कोटियाँ होंगी। दूसरे शब्दों में सामाजिक क्रिया और उनमें अन्तर्निहित योग्यता होगी, इसके विश्लेषण की इकाइयाँ होंगी, विभिन्न भाषिक कार्यों और प्रक्रियाओं की विभिन्न परिस्थितियाँ होंगी। इसकी पद्धति अनेक रूपात्मक होगी। इसमें पदार्थ विज्ञानों की तरह वस्तुनिरीक्षण और परीक्षण का भी उपयोग होगा। इसके साथ ही कला-शास्त्रों की तरह निर्वचन और व्याख्या का भी उपयोग होगा। अकेले किसी एक से काम लेने से संप्रेषण का पूरा प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

हिन्दी से कुछ उदाहरण लेकर इस बात को समझें तो बात कुछ अधिक स्पष्ट होगी। व्याकरण से सामान्य व्याकरण 'आ', 'आओ' और 'आइये' में संरचना की दृष्टि से एकवचन, बहुवचन, आदरार्थक बहुवचन 'तू' 'तुम' और 'आप' तीन कर्ताओं से जोड़कर (चाहे वह अभिहित हो या अनभिहित हो) देखें तो संप्रेषण की दृष्टि से एक ही 'आ' के तीन स्तर होंगे—'आ', 'आ न'। सम्प्रेषण की दृष्टि से जब हम विचार करेंगे तो संबोध्य और संबोधक के विनेय-भाव का विचार करेंगे, सम्बोधक के आज्ञा, मनुहार, अनुरोध, निश्चयात्मक, स्वीकृति आदि अभिप्रायों पर विचार करेंगे, औपचारिक-अनौपचारिक, सामाजिक परिस्थितियों पर विचार करेंगे, विनम्र सम्बोध्य-सम्बोधक के बीच परिचय के विविध स्तरों का विचार करेंगे और इस दृष्टि से कर्ता और क्रिया के बीच केवल संरचनात्मक समीकरण पर्याप्त नहीं होगा। आगे कुछ वाक्य दिये जा रहे हैं जिनको संप्रेषण व्याकरण के अन्तर्गत एक प्रस्तावित ढाँचे में रखा गया है—

1. विनेय सम्बोध्य	
(अ) आज्ञा	आ।
अत्यन्त मनुहार	आ न।
स्वीकृति निश्चय	आयेगा न।

आज्ञा
स्नेहपूर्वक पुकार
मनुहार
स्वीकृति निश्चय

2. सम्बोध्य और सम्बोधक समस्तरी
अनुरोध
मनुहार
स्वीकृति निश्चय

3. विनेय सम्बोधक
(अ) वैयक्तिक अनौपचारिक
अनुरोध
मनुहार
स्वीकृति निश्चय
औपचारिक
अनुरोध
विशेष अनुरोध
स्वीकृति निश्चय

(ब) निर्वैयक्तिक अनौपचारिक
अनुरोध
मनुहार
स्वीकृति निश्चय
औपचारिक
अनुरोध
विशेष अनुरोध
स्वीकृति निश्चय

इस साँचे को ध्यानपूर्वक देखें तो शक्ति के आधार पर एक विभाजन किया ग शाली हो सकता है, या स्नेह के अधिका सम्बोध्य और सम्बोधक दोनों समान रू व्यक्तिगत या सामाजिक दृष्टि से शक्तिश सकता है अथवा औपचारिक दृष्टि से आ सम्बोधक या वक्ता का अभिप्राय और सम्व अनौपचारिकता के लिए 'कृपया' जैसे अति

पर 'पधारना' जैसे शब्द-चयन का एक आयाम प्रस्तुत करता है। अनुतान के परिवर्तन से प्रत्येक खाने के वाक्य ललकार, उपहास, व्यंग्य, आक्षेप के भी द्योतक हो सकते हैं पर तब कुछ और भाषिक संकेत आवश्यक होते हैं।

'विटिगिंस्टाइन' ने भाषा को लेकर मानव-अन्तर-व्यापार मात्र को भाषा-क्रीड़ा कहा है। इस क्रीड़ा में वक्ता शब्दों के द्वारा श्रोता को सूचना देने का प्रयत्न करता है।

1. श्रोता उस संदेश को ग्रहण करता है।

2. श्रोता उस सूचना को अपने लिए प्रत्याकलित करता है।

3. श्रोता संदेश का प्रयोजन समझता है और अपना कर्त्तव्य निर्धारित करता है।

4. श्रोता ग्रहण और प्रयोजन समझने के कुछ ही समय के भीतर अपनी प्रतिक्रिया संदेश के द्वारा अपेक्षित आचरण के माध्यम से व्यक्त करता है।

यह ध्यातव्य है कि एकतरफा सम्प्रेषण भाषा-क्रीड़ा नहीं हो सकता। भाषा-क्रीड़ा में पारस्परिकता आवश्यक है। रेडियो भाषण और मन से दिया गया भाषण एक तरफा सम्प्रेषण का नमूना है। परस्पर सहयोग की अपेक्षा रहते हुए भी भाषा के खेलों में विविधता निम्नलिखित कारणों से आती है—

1. अभिव्यक्ति के प्रकार के कारण हो सकते हैं। इस प्रकार झगड़ा, परिचय, दुलार, ऊब से निस्तार पाना हो सकता है।

2. सामाजिक संस्था की माँग हो सकते हैं, जैसे विवाह, अनुष्ठान, धर्म-प्रवचन तथा मत देने के लिए भाषण हो सकते हैं।

3. यह स्थिति कुछ कम संस्थाबद्ध उद्देश्य से उत्पन्न हो सकती है, जिसमें औपचारिकता और अनौपचारिकता दोनों का उपयोग आवश्यक हो जाता है; जैसे—साक्षात्कार, वार्ता, समझौता वार्ता, सौदा तय करना, समिति की बैठक, अदालत में जिरह, सम्मेलन आदि में भाषा का प्रवाह।

4 यह परिस्थिति ऐसी हो सकती है जिसमें उपर्युक्त कोई भी उद्देश्य न हो; जैसे-- गपशप, राम-रमौवल या पनघट पर स्त्रियों की बातचीत। इन सभी स्थितियों में वक्ता के द्वारा बातचीत का आरम्भ भिन्न प्रकार से होता है। श्रोता का उत्तर भी भिन्न प्रकार से होता है। उस उत्तर के बाद वक्ता की प्रतिक्रिया भी यदि होती है तो भिन्न प्रकार की होती है। संप्रेषण की चरितार्थता अपेक्षा रखती है कि इन सभी स्थितियों का जायजा लेते हुए भाषा-प्रयोग के नियम बनाये जायँ। अभी-अभी ऊपर जो चार स्थितियाँ जनाई गई हैं उनमें पहली स्थिति में श्रोता की प्रतिक्रिया

और उसके बाद वक्ता की प्रतिक्रिया आवश्यक है पर पूर्वानुमेय नहीं है। द्वितीय स्थिति में भी आवश्यक हैं पर पूर्वानुमेय है जैसे किसी भी अनुष्ठान में पुरोहित और यजमान के बीच संवाद का क्रम पूर्वनिश्चित है। तृतीय स्थिति में श्रोता की प्रतिक्रिया के अनुसार वक्ता की प्रारम्भिक क्रिया नियन्त्रित है। श्रोता की प्रतिक्रिया अवाचिक भी हो सकती है। दूसरी स्थिति में वक्ता अपने भाषा-व्यवहार के परिचालन में श्रोत्र निरपेक्ष ही रहता है जबकि तीसरी परिस्थिति में श्रोता की प्रतिक्रिया की भूमिका अधिक तीव्रतर हो जाती है। चौथी परिस्थिति में वक्ता को केवल इसकी अपेक्षा होती है कि कोई सुन रहा है और कुछ भी कह रहा है। उसे किसी विशेष प्रतिक्रिया की अपेक्षा नहीं होती, वह केवल एक अवधि तक बातचीत चलते रहने से ही सरोकार रखता है। पहली और चौथी परिस्थिति में बातचीत का बहुत बड़ा हिस्सा इसके सिवा कोई अर्थ नहीं रखता कि बात का सिलसिला बना रहे। उसमें निरर्थकता (रिडेन्डेन्सी) द्वितीय और तृतीय परिस्थितियों की अपेक्षा अधिक होती है। संबोधन प्रकार में परिवर्तन भी एक ही व्यक्ति से अनेक प्रकार के होते हैं जबकि द्वितीय और तृतीय परिस्थिति में ये प्रकार निश्चित होते हैं और सम्बोधक व्यंजक शब्दों का प्रयोग बहुत सीमित होता है। प्रायः कृत कार्य हो जाता है।

वक्ता के शिक्षा-संस्कार के कारण भाषा-व्यवहार के दो स्तर होते हैं—

1. सामान्य।
2. विशिष्ट।

सामान्य के नीचे का भी एक स्तर होता है— अशिष्ट।

क्रोध, घृणा, जैसे वेगों के प्रभाव से सामान्य स्थिति में अपने को रख सकने वाले व्यक्ति अशिष्ट हो जाते हैं जैसे —सामान्य भाषा में कहेंगे—

'उसका बाप मर गया।'

इसी का अशिष्ट रूप होगा—

'उसका बाप जहन्नुम को चला गया।'

अशिष्टतर पर आयें तो कहेंगे—

'उसका बाप खलास।'

शिष्ट भाषा में शिष्ट प्रयोग के भी कई स्तर होते हैं। मृत व्यक्ति के धार्मिक विश्वास को ध्यान में रखते हुए व्यवहार कुशल वक्ता कभी कहेगा—

'उसके पिताश्री दिवंगत हुए।'

कभी कहेगा—

'उनके अब्बाजान खुदा के प्यारे हुए ।'

कभी कहेगा—

'उनके पिताजी शिव सायुज्य को प्राप्त हुए ।'

या ऐसे ही अनेक विकल्प हो सकते हैं ।

मृत्यु की अमंगलता को ध्यान में रखते हुए कभी-कभी सीधे कुछ भी न कह कर केवल कहेंगे—

'उनके पिताजी के बारे में बड़ी वैसी सूचना मिली है ।'

इन सब प्रकार के प्रयोगों के पीछे शिक्षास्तर तो प्रयोजक है ही, वक्ता का सन्दर्भित व्यक्ति के बारे में तथा श्रोता के साथ सन्दर्भित व्यक्ति के मनोभाव में भी प्रयोजन है ।

शिष्ट भाषा में यदि वक्ता श्रोता से प्रभावकारी ढंग से अपनी बात मनवाना चाहता है तो वह संभावनार्थक क्रिया का ही प्रयोग करता है । यदि परस्पर विश्वास है तो इतने से ही काम चलेगा—

'हम कल मिलेंगे ।'

पर यदि श्रोता के ऊपर मिलने की बात छोड़ देना है जिससे मिलना निश्चित हो जाय—

'अब कल मिलने की बात रखी जाय ।

इन दोनों प्रकार के वाक्यों से अलग एक तटस्थ शिष्ट का प्रयोग है—

'कल मिलिए ।'

जिसमें श्रोता से अनुरोध मात्र है । श्रोता के प्रति विश्वास या विशेष आदर नहीं । ये तीनों प्रयोग यह द्योतित करते हैं कि वक्ता शिष्ट होने के साथ-साथ विनेय है । वक्ता के और श्रोता के विभिन्न परिस्थिति में पहले दिया गया साँचा अनुवर्तित होगा । जहाँ शिष्टता का स्तर नहीं होगा वहाँ प्यार के द्योतन के लिए भी सम्बोधन होंगे या एक अतिरिक्त क्रिया 'जा' जुड़ जायेगी—

'जा कल मिलेंगे ।

या सम्बोधन की शिष्टता जहाँ वैयक्तिक है वहाँ औपचारिकता सामाजिक है । सामाजिक परिस्थिति की माँग होती है कि आदमी शिष्ट हो या अशिष्ट हो औपचारिक हो जाता है । पंचों के सामने अत्यन्त अशिक्षित व्यक्ति भी (यहाँ निरक्षर से अभिप्राय है, क्योंकि निरक्षरों में भी शिक्षित-अशिक्षित दोनों होते हैं) शिक्षित व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है । अनौपचारिक भाषा में कोई कहेगा—

'देखो भाई आ नहीं पाऊँगा ।'

तो औपचारिक भाषा में कहेगा—

'खेद है, आ नहीं पाऊँगा ।'

या

'माफ करें हाजिर नहीं हो पाऊँगा ।'

अनौपचारिक भाषा में कहेंगे—

'आपको न्योत रहा हूँ ।'

इसी का औपचारिक परिवर्तन है—

'आप सादर आमंत्रित हैं ।

अनौपचारिक भाषा में यदि भोजन के समय नमक ज्यादा है तो प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे—

'कितना नमक ?'

पर औपचारिक स्तर पर कहेंगे—

'मेरे मुख का स्वाद खराब है, नमक कुछ ज्यादा लग रहा है ।'

औपचारिकता को ही द्योतित करने के लिए तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं और अनौपचारिकता प्रकट करने के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हैं पर कभी-कभी समस्या संश्लिष्ट हो सकती है । वक्ता के सामाजिक स्तर को द्योतित करने के लिए भी तत्सम प्रयोग अपेक्ष्य हो जाता है और कभी-कभी व्यंग-आक्षेप के लिए भी तत्सम का प्रयोग किया जाता है इसलिए अकेले द्वैत के आधार पर तत्सम/तद्भव के औपचारिक-अनौपचारिक स्ति का निर्णय नहीं लिया जा सकता ।

अब तक जो बात हुई है वह भाषा के सामाजिक पक्ष को लेकर हुई है किन्तु भाषा की मनोवैज्ञानिक स्थिति को लेकर संप्रेषण पर विचार करेंगे तो दो बातें आती हैं—एक तो अभिव्यक्ति का प्रकार क्या है—विश्वास, आशा, विस्मय, इच्छा, आवेग या मनोवृत्ति की सबल अभिवृत्ति की प्रबलता । भाषा के प्रयोक्ता को इन प्रकार्यों में श्रोता की प्रतिक्रिया की अपेक्षा नहीं है । यह वक्ता की अपनी प्रेरक अभिवृत्ति की वृत्ति का वैविध्य है । पर श्रोता से भी कुछ प्राप्त करना होता है । कभी यह उद्देश्य विश्वास, वाचिक उत्तर, कोई वस्तु या किसी कार्य की पूर्ति या कुछ भी नहीं प्राप्त करना हो सकता है, जब कहते हैं—'आऊँगा' तो उसमें वक्ता का भी विश्वास है और श्रोता से भी विश्वास की अपेक्षा है कि आना निश्चित है, इसी वाक्य को हम ख्यापनात्मक वाक्य कहते हैं । पर यदि हम इसमें—'आशा है, आऊँगा' जोड़ देते हैं या कहते हैं—'भरसक मैं आऊँगा', या सिर्फ 'आऊँ' तो आने की आशा तो है पर आना और न आना दोनों विकल्प संभव हैं । इसमें भी श्रोता से यह विश्वास अपेक्षित है कि वह आशा तो रखे पर मानकर चले कि भाव ना न आने की भी है । इसको हम संभावनात्मक वाक्य कहते हैं ।

जब कहते हैं—

क्या आओगे ?

तब इसमें एक कुतूहल या परिप्रीक्षा का भाव है। दूसरी ओर श्रोता से अपेक्षा कि वह उत्तर दे कि 'मैं आऊँगा'। इसी को हम प्रश्न वाक्य कहते हैं। जब कहते हैं—

'पानी लाओ या बैठो'

तो एक ओर तो प्यास की इच्छा द्योतित होती है या श्रोता के बैठने की इच्छा द्योतित होती है और दूसरी ओर श्रोता से पानी वस्तु की या बैठने की क्रिया की अपेक्षा भी होती है। इसी को आज्ञार्थक वाक्य कहते हैं। जब कहते हैं—

'अरे ! तुम आ गये।' या 'वाह !' या 'शाबाश ! '

तो एक ओर तो वक्ता की आवेगतीव्रता द्योतित होती है, दूसरी ओर श्रोता से कुछ भी अपेक्षित नहीं होता सिर्फ आवेग की सहगामिता अपने आप वक्ता-श्रोता के तादात्म्य से चरितार्थ हो जाती है। इस वाक्य को हम आश्चर्य या विस्मयबोधक वाक्य कहते हैं। इस प्रकार संप्रेषण के दोनो पहलू वृत्तियों के साँचे में समाविष्ट हो जाते हैं। यदि हम इन्हें आगे दी गयी तालिका के अनुसार विन्यस्त करें तो, यह बात स्पष्ट हो जाएगी। यह तालिका 'यंस-ऐल्वुड' ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 126 पर प्रस्तावित की है—

		EXPRESSIVE FUNCTION				
		belief	hope	wonder	wish	Strong occurrence of emotion or attitude
Object of manipulatory intention.	belief	Declarative	optative			
	verbal reply					
	anything				Imperative	
	nothing					Exclamative

		अभिव्यक्ति प्रकार्य				
		विश्वास	आशा	कुतूहल	इच्छा	आवेग पर बल
भाषा संचालन	विश्वास	व्यापनात्मक	संभावनात्मक			
उद्देश्य	वाचिक-उत्तर			प्रश्न-वाचक		
रूप श्रोता से	कुछ कार्य या कोई वस्तु				आज्ञात्मक	
प्रत्याशा	कुछ नहीं					आश्चर्य-बोधक

परम्परागत व्याकरण को इस रूप में समावेशात्मक बनाने से संप्रेषणात्मक व्याकरण का एक साँचा तैयार हो जाता है पर वास्तविक रूप में यह तो केवल एक संभावना का रूप है। संप्रेषणात्मक व्याकरण के अनेक आयाम हैं। उनमें एक सर्जनात्मक भी है। सर्जनात्मक आयाम का प्राचीन भारत के आलंकारिकों ने विशेष करके ध्वनिकार और वक्रोक्तिकार ने महत्वपूर्ण कार्य किया है और रीतिभाषिकी या शैलीभाषिकी के विद्वानों ने आधुनिक युग में काफी काम किया है परन्तु सामान्य सर्जनेतर संप्रेषण के भी विविध स्तर हैं और ये स्तर सामाजिक स्थितियों से नियंत्रित और परिचालित हैं। इसकी व्यापक रूप में पैमाइश ही नहीं हुई। केवल हिन्दी की ही बात नहीं दूसरी भाषाओं में भी यह कार्य स्थापना की स्थिति में ही है। परीक्षण और परीक्षण की प्रामाणिकता की अवस्था ही नहीं सामने आयी। भारत जैसे भाषा-संवेदनशील सक्रिय साझेदारी के लिए समस्त राष्ट्र की सम्पर्क भाषा के संप्रेषण व्याकरण काल संप्रेषण की तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति संरचनात्मक या रूपात्मक व्याकरण से नहीं हो सकती। इसके लिए भाषा-व्यवहारों के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक के साथ जोड़ने वाले सूत्रों की तलाश आवश्यक है। यह काम एक बहुत बड़ी चुनौती है, भाषाविदों के सामने और विशेषकर प्रायोगिक भाषाविज्ञानविदों के सामने।

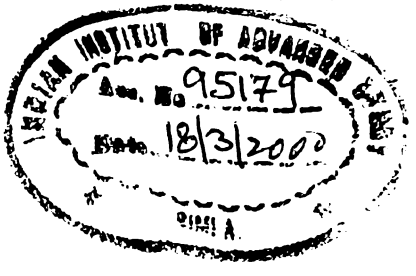

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 95179
Date 18/3/2000
SIMLA